दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखहर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,२५,०००)

अभिलाषा

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो॥
जथालाभसंतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो॥

क्या मैं कभी इस रहनीसे रहूँगा? क्या कृपालु श्रीरघुनाथजीकी कृपासे कभी मैं सन्तोंका-सा स्वभाव ग्रहण करूँगा। जो कुछ मिल जायगा उसीमें सन्तुष्ट रहूँगा, किसीसे (मनुष्य या देवतासे) कुछ भी नहीं चाहूँगा। निरन्तर दूसरोंकी भलाई करनेमें ही लगा रहूँगा। मन, वचन और कर्मसे यम-नियमोंका पालन करूँगा। कानोंसे अति कठोर और असह्य वचन सुनकर भी उससे उत्पन्न हुई (क्रोधकी) आगमें न जलूँगा। अभिमान छोड़कर सबमें समबुद्धि रहूँगा और मनको शान्त रखूँगा। दूसरोंकी स्तुति-निन्दा कुछ भी नहीं करूँगा (सदा आपके चिन्तनमें लगे हुए मुझको दूसरोंकी स्तुति-निन्दाके लिये समय ही नहीं मिलेगा)। शरीरसम्बन्धी चिन्ताएँ छोड़कर सुख और दु:खको समान-भावसे सहूँगा। हे नाथ! क्या तुलसीदास इस (उपर्युक्त) मार्गपर रहकर कभी अविचल हरि-भक्तिको प्राप्त करेगा? **[विनय-पत्रिका]**

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते। * कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

वार्षिक शुल्क *
भारतमें १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Rs. 1250)
(Sea Mail)
US$40 (Rs. 2000)
(Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क *
भारतमें ७५० रु०
सजिल्द ८५० रु०

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **Kalyan@gitapress.org** | © (0551) 2334721

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकमत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

वर्ष ८४

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६६, श्रीकृष्ण-सं० ५२३५, जनवरी २०१० ई०

संख्या १

पूर्ण संख्या ९९८

गृहस्थोचित शिष्टाचार

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्। शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः॥
शुश्रूषन्ते ये पितरं मातरं च गृहाश्रमे॥
भर्तारं चैव या नारी अग्निहोत्रं च ये द्विजाः। तेषु तेषु च प्रीणन्ति देवा इन्द्रपुरोगमाः॥
पितरः पितृलोकस्थाः स्वधर्मेण स रज्यते।
यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तथा गृहाश्रमं प्राप्य सर्वे जीवन्ति चाश्रमाः॥

[**भगवान् महेश्वर पार्वतीजीसे बोले—देवि!**] किसी भी जीवकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियोंपर दया करना, मन और इन्द्रियोंपर काबू रखना तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देना गृहस्थ-आश्रमका उत्तम धर्म है। जो लोग गृहस्थाश्रममें रहकर माता-पिताकी सेवा करते हैं, जो नारी पतिकी सेवा करती है तथा जो ब्राह्मण नित्य अग्निहोत्र-कर्म करते हैं, उन सबपर इन्द्र आदि देवता, पितृलोकनिवासी पितर प्रसन्न होते हैं एवं वह पुरुष अपने धर्मसे आनन्दित होता है। जैसे सभी जीव माताका सहारा लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ-आश्रमका आश्रय लेकर ही जीवन-यापन करते हैं।

[महा०, अनु०, अ० १४१]

मङ्गलाशंसा

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः॥

ज्योति ही जिसका मुख है, वह अग्नि हमारे लिये कल्याणकारक हो; मित्र, वरुण और अश्विनीकुमार हमारे लिये कल्याणप्रद हों; पुण्यशाली व्यक्तियोंके कर्म हमारे लिये सुख प्रदान करनेवाले हों तथा वायु भी हमें शान्ति प्रदान करनेके लिये बहे।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥

द्युलोक और पृथ्वी हमारे लिये सुखकारक हों, अन्तरिक्ष हमारी दृष्टिके लिये कल्याणप्रद हों, ओषधियाँ एवं वृक्ष हमारे लिये कल्याणकारक हों तथा लोकपति इन्द्र भी हमें शान्ति प्रदान करें।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥

विस्तृत तेजसे युक्त सूर्य हम सबका कल्याण करता हुआ उदित हो। चारों दिशाएँ हमारा कल्याण करनेवाली हों। अटल पर्वत हम सबके लिये कल्याणकारक हों। नदियाँ हमारा हित करनेवाली हों और उनका जल भी हमारे लिये कल्याणप्रद हो।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥

अदिति हमारे लिये कल्याणप्रद हों, मरुद्गण हमारा कल्याण करनेवाले हों। विष्णु और पुष्टिदायक देव हमारा कल्याण करें तथा जल एवं वायु भी हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाले हों।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥

रक्षा करनेवाले सविता हमारा कल्याण करें, सुशोभित होती हुई उषादेवी हमें सुख प्रदान करें, वृष्टि करनेवाले पर्जन्यदेव हमारी प्रजाओंके लिये कल्याणकारक हों और क्षेत्रपति शम्भु भी हम सबको शान्ति प्रदान करें।

शं नो देवा विश्वेदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।

सभी देवता हमारा कल्याण करनेवाले हों, बुद्धि प्रदान करनेवाली देवी सरस्वती भी हम सबका कल्याण करें। **[ऋग्वेद]**

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

देवताओंद्वारा प्रतिष्ठित, जगत्के नेत्रस्वरूप तथा दिव्य तेजोमय जो भगवान् आदित्य पूर्व दिशामें उदित होते हैं; उनकी कृपासे हम सौ वर्षोंतक देखें अर्थात् सौ वर्षोंतक हमारी नेत्र-ज्योति बनी रहे, सौ वर्षोंतक सुखपूर्वक जीवन-यापन करें, सौ वर्षोंतक सुनें अर्थात् सौ वर्षोंतक श्रवण-शक्तिसे सम्पन्न रहें, सौ वर्षोंतक अस्खलित वाणीसे युक्त रहें, सौ वर्षोंतक दैन्यभावसे रहित रहें अर्थात् किसीके समक्ष दीनता प्रकट न करें। सौ वर्षोंसे ऊपर भी बहुत कालतक हम देखें, जीयें, सुनें, बोलें और अदीन रहें। **[शुक्लयजुर्वेद]**

जीवनचर्याश्रुतिकल्पलता

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम्॥

जिस व्यक्तिने जन्म लिया है, वह जीवनको सुन्दर बनानेके लिये उत्पन्न हुआ है। वह जीवन-संग्राममें लक्ष्य-साधनके हेतु अध्यवसाय करता है। धीर व्यक्ति अपनी मननशक्तिसे कर्मोंको पवित्र करते हैं और विप्रजन दिव्य भावनासे वाणीका उच्चारण करते हैं। (ऋग्वेद ३।८।५)

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्॥

उत्तम ज्ञानके अनुसन्धानकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिके सामने सत्य और असत्य दोनों प्रकारके वचन परस्पर स्पर्धा करते हुए उपस्थित होते हैं। उनमेंसे जो सत्य है, वह अधिक सरल है। शान्तिकी कामना करनेवाला व्यक्ति उसे चुन लेता है और असत्यका परित्याग करता है। (ऋग्वेद ७।१०४।१२)

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥

जो मनुष्य सत्य-ज्ञानके उपदेश देनेवाले मित्रका परित्याग कर देता है, उसके वचनोंको कोई नहीं सुनता। वह जो कुछ सुनता है, मिथ्या ही सुनता है। वह सत्कार्यके मार्गको नहीं जानता। (ऋग्वेद १०।७१।६)

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥

अन्नकी कामना करनेवाले निर्धन याचकको जो अन्न देता है, वही वास्तवमें भोजन करता है। ऐसे व्यक्तिके पास पर्याप्त अन्न रहता है और समय पड़नेपर बुलानेसे, उसकी सहायताके लिये तत्पर अनेक मित्र उपस्थित हो जाते हैं। (ऋग्वेद १०।११७।३)

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।

मनुष्य अपने सम्मुख जीवनका दीर्घ पथ देखे और याचना करनेवालेको दान देकर सुखी करे। (ऋग्वेद १०।११७।५)

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

पुत्र पिताके व्रतका पालन करनेवाला हो तथा माताका आज्ञाकारी हो। पत्नी अपने पतिसे शान्तियुक्त मीठी वाणी बोलनेवाली हो। (अथर्ववेद ३।३०।२)

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

भाई-भाई आपसमें द्वेष न करें। बहिन बहिनके साथ ईर्ष्या न रखे। आप सब एकमत और समान व्रतवाले बनकर मृदु वाणीका प्रयोग करें। (अथर्ववेद ३।३०।३)

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

मेरी दृष्टिको दृढ कीजिये; सभी प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें; मैं भी सभी प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूँ; हम परस्पर एक-दूसरेको मित्रकी दृष्टिसे देखें। (यजुर्वेद ३६।१८)

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनस्वरूप जगत् है—यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है, उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक (इसे) भोगते रहो, (इसमें) आसक्त मत होओ (क्योंकि) धन—भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है। (ईशावास्य० १)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

शास्त्रनियत कर्मोंको (ईश्वरपूजार्थ) करते हुए ही इस जगत्में सौ वर्षोंतक जीनेकी इच्छा करनी चाहिये, इस प्रकार (त्यागभावसे, परमेश्वरके लिये) किये जानेवाले

कर्म तुझ मनुष्यमें लिप्त नहीं होंगे, इससे (भिन्न) अन्य कोई प्रकार अर्थात् मार्ग नहीं है (जिससे कि मनुष्य कर्मसे मुक्त हो सके)। (ईशावास्य० २)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंको परमात्मामें ही निरन्तर देखता है और सम्पूर्ण प्राणियोंमें परमात्माको (देखता है), उसके पश्चात् (वह कभी भी) किसीसे घृणा नहीं करता। (ईशावास्य० ६)

आशाप्रतीक्षे संगतꣳ सूनृतां च
इष्टापूर्ते पुत्रपशूꣳश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥

जिसके घरमें ब्राह्मण अतिथि बिना भोजन किये निवास करता है, उस मन्दबुद्धि मनुष्यकी नाना प्रकारकी आशा और प्रतीक्षा उनकी पूर्तिसे होनेवाले सब प्रकारके सुख, सुन्दर भाषणके फल एवं यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मोंके और कुआँ, बगीचा, तालाब आदि निर्माण करानेके फल तथा समस्त पुत्र और पशु—इन सबको (वह) नष्ट कर देता है। (कठोपनिषद् १।१।८)

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

श्रेय और प्रेय—ये दोनों ही मनुष्यके सामने आते हैं, बुद्धिमान् मनुष्य उन दोनोंके स्वरूपपर भली-भाँति विचार करके उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है और वह बुद्धिश्रेष्ठ मनुष्य परम कल्याणके साधनको ही भोग-साधनकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है, (परंतु) मन्दबुद्धिवाला मनुष्य लौकिक योगक्षेमकी इच्छासे, भोगोंके साधनरूप प्रेयको अपनाता है। (कठोपनिषद् १।२।२)

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न
चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

यदि इस मनुष्यशरीरमें (परब्रह्मको) जान लिया तब तो बहुत कुशल है, यदि इस शरीरके रहते-रहते (उसे) नहीं जान पाया (तो) महान् विनाश है, (यही सोचकर) बुद्धिमान् पुरुष प्राणी-प्राणीमें (प्राणिमात्रमें) (परब्रह्म पुरुषोत्तमको) समझकर इस लोकसे प्रयाण करके अमर (परमेश्वरको प्राप्त) हो जाते हैं। (केनोपनिषद् २।५)

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥

जो (कोई) मनुष्य विवेकशील बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न (और) मनरूप लगामको वशमें रखनेवाला है, वह संसारमार्गके पार पहुँचकर परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्‌के उस सुप्रसिद्ध परमपदको प्राप्त हो जाता है। (कठोपनिषद् १।३।९)

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

(हे मनुष्यो!) उठो, जागो (सावधान हो जाओ और) श्रेष्ठ महापुरुषोंके पास जाकर (उनके द्वारा) उस परब्रह्म परमेश्वरको जान लो (क्योंकि) त्रिकालज्ञ ज्ञानीजन उस तत्त्वज्ञानके मार्गको छूरेकी तीक्ष्ण एवं दुस्तर धारके सदृश दुर्गम (अत्यन्त कठिन) बतलाते हैं। (कठोपनिषद् १।३।१४)

सत्यमेव जयति नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

सत्य ही विजयी होता है, झूठ नहीं; क्योंकि वह देवयान नामक मार्ग सत्यसे परिपूर्ण है, जिससे पूर्णकाम ऋषिलोग (वहाँ) गमन करते हैं, जहाँ वह सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्माका उत्कृष्ट धाम है। (मुण्डकोपनिषद् ३।१।६)

प्रात:स्मरणीय श्लोक

गणेशस्मरण—

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं
सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम्।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-
माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम्॥

अनाथोंके बन्धु, सिन्दूरसे शोभायमान दोनों गण्डस्थल-वाले, प्रबल विघ्नका नाश करनेमें समर्थ एवं इन्द्रादि देवोंसे नमस्कृत श्रीगणेशजीका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ।

विष्णुस्मरण—

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिनाशं
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्॥

संसारके भयरूपी महान् दु:खको नष्ट करनेवाले, ग्राहसे गजराजको मुक्त करनेवाले, चक्रधारी एवं नवीन कमलदलके समान नेत्रवाले, पद्मनाभ गरुडवाहन भगवान् श्रीनारायणका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ।

शिवस्मरण—

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥

संसारके भयको नष्ट करनेवाले, देवेश, गंगाधर, वृषभवाहन, पार्वतीपति, हाथमें खट्वांग एवं त्रिशूल लिये और संसाररूपी रोगका नाश करनेके लिये अद्वितीय औषध-स्वरूप, अभय एवं वरद मुद्रायुक्त हस्तवाले भगवान् शिवका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ।

देवीस्मरण—

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम्।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम्॥

शरत्कालीन चन्द्रमाके समान उज्ज्वल आभावाली, उत्तम रत्नोंसे जटित मकरकुण्डलों तथा हारोंसे सुशोभित, दिव्यायुधोंसे दीप्त सुन्दर नीले हजारों हाथोंवाली, लाल कमलकी आभायुक्त चरणोंवाली भगवती दुर्गादेवीका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ।

सूर्यस्मरण—

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम्॥

सूर्यका वह प्रशस्त रूप जिसका मण्डल ऋग्वेद, कलेवर यजुर्वेद तथा किरणें सामवेद हैं। जो सृष्टि आदिके कारण हैं, ब्रह्मा और शिवके स्वरूप हैं तथा जिनका रूप अचिन्त्य और अलक्ष्य है, प्रात:काल मैं उनका स्मरण करता हूँ।

त्रिदेवोंके साथ नवग्रहस्मरण—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(मार्क०स्मृ०)

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये सभी मेरे प्रात:कालको मंगलमय करें।

ऋषिस्मरण—

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च
मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपु० १४। ३३)

भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन और दक्ष—ये समस्त मुनिगण मेरे प्रात:कालको मंगलमय करें।

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलानि
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।

भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपु० १४। २४, २७)

सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि और पिंगल—ये ऋषिगण; षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद—ये सप्त स्वर; अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात अधोलोक सभी मेरे प्रात:कालको मंगलमय करें। सातों समुद्र, सातों कुलपर्वत, सप्तर्षिगण, सातों वन तथा सातों द्वीप, भूर्लोक, भुवर्लोक आदि सातों लोक सभी मेरे प्रात:कालको मंगलमय करें।

प्रकृतिस्मरण—

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाप:
स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेज:।
नभ: सशब्दं महता सहैव
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपु० १४। २६)

गन्धयुक्त पृथ्वी, रसयुक्त जल, स्पर्शयुक्त वायु, प्रज्वलित तेज, शब्दसहित आकाश एवं महत्तत्त्व—ये सभी मेरे प्रात:कालको मंगलमय करें।

इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं
पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या।
दु:स्वप्ननाशस्त्विह सुप्रभातं
भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात्॥

(वामनपु० १४। २८)

इस प्रकार उपर्युक्त इन प्रात:स्मरणीय परम पवित्र श्लोकोंका जो मनुष्य भक्तिपूर्वक प्रात:काल पाठ करता है, स्मरण करता है अथवा सुनता है, भगवद्दयासे उसके दु:स्वप्नका नाश हो जाता है और उसका प्रभात मंगलमय होता है।

पुण्यश्लोकोंका स्मरण

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको जनार्दन:।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको युधिष्ठिर:॥
अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषण:।
कृप: परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविन:॥

(पद्मपु० ५१। ६-७)

राजा नल पुण्यकीर्तिवाले हैं, भगवान् जनार्दन पुण्यकीर्तिवाले हैं, माता सीता पुण्यकीर्तिशालिनी हैं और धर्मराज युधिष्ठिर पुण्यकीर्तिवाले हैं। अश्वत्थामा, बलि, वेदव्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम—ये सात चिरजीवी हैं।

सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जित:॥

(आचारेन्दु)

इन सातों तथा आठवें जो मार्कण्डेयजी हैं, उनका नित्य स्मरण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसकी अकालमृत्यु नहीं होती और वह सौ वर्षसे भी अधिक जीता है।

उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम्।
प्रातरेव पठेन्नित्यं सौभाग्यं वर्धते सदा॥
सोमनाथो वैद्यनाथो धन्वन्तरिरथाश्विनौ।
पञ्चैतान् य: स्मरेन्नित्यं व्याधिस्तस्य न जायते॥

उमा, उषा, सीता, लक्ष्मी तथा गंगा—इन पाँच नामोंका नित्य प्रात:काल पाठ करना चाहिये, इससे सौभाग्यकी सदा वृद्धि होती है। सोमनाथ, वैद्यनाथ, धन्वन्तरि तथा दोनों अश्विनीकुमारों—इन पाँचोंका जो नित्य स्मरण करता है, उसे कोई रोग नहीं होता।

कपिला कालियोऽनन्तो वासुकिस्तक्षकस्तथा।
पञ्चैतान् स्मरतो नित्यं विषबाधा न जायते॥
हरं हरिं हरिश्चन्द्रं हनूमन्तं हलायुधम्।
पञ्चकं वै स्मरेन्नित्यं घोरसङ्कटनाशनम्॥

कपिला गौ, कालिय, अनन्त, वासुकि तथा तक्षक नाग—इन पाँचोंका नित्य नाम-स्मरण करनेसे विषकी बाधा नहीं होती। भगवान् शिव, भगवान् विष्णु, हरिश्चन्द्र, हनुमान् तथा बलराम—इन पाँचोंका नित्य स्मरण करना चाहिये, यह (स्मरण) घोर संकटका नाश करनेवाला है।

आदित्यश्च उपेन्द्रश्च चक्रपाणिर्महेश्वर:।
दण्डपाणि: प्रतापी स्यात् क्षुत्तृड्बाधा न बाधते॥
वसुर्वरुणसोमौ च सरस्वती च सागर:।
पञ्चैतान् संस्मरेद् यस्तु तृषा तस्य न बाधते॥

आदित्य, उपेन्द्र, चक्रपाणि विष्णु, महेश्वर तथा प्रतापी दण्डपाणिका स्मरण करनेसे भूख और प्यासकी

पीड़ा नहीं सताती। अष्ट वसु, वरुण, सोम, सरस्वती तथा सागर—इन पाँचोंका जो स्मरण करता है, उसे प्यासकी पीड़ा नहीं होती।

सनत्कुमारदेवर्षिशुकभीष्मप्लवङ्गमाः ।
पञ्चैतान् स्मरतो नित्यं कामस्तस्य न बाधते॥
रामलक्ष्मणौ सीता च सुग्रीवो हनुमान् कपिः।
पञ्चैतान् स्मरतो नित्यं महाबाधा प्रमुच्यते॥
विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥

सनत्कुमार, देवर्षि नारद, शुकदेव, भीष्म तथा हनुमान्‌जी—इन पाँचोंका नित्य स्मरण करनेवालेको काम नहीं सताता। राम, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव तथा वानर हनुमान्‌जी—इन पाँचोंका नित्य स्मरण करनेवाला महाबाधासे मुक्त हो जाता है। विश्वेश्वर, बिन्दुमाधव, ढुण्ढिराज, दण्डपाणि, कालभैरव, काशी, गुहा, गंगा, भवानी अन्नपूर्णा तथा मणिकर्णिकाको मैं नमस्कार करता हूँ।

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे॥
हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥
इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत्
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति॥

मनुष्य इस जगत्‌में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे। अज्ञानी पुरुषको प्रतिदिन हर्षके हजारों और भयके सैकड़ों अवसर प्राप्त होते रहते हैं; किंतु विद्वान् पुरुषके मनपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है; अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते। कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य, इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है उसके बन्धनका हेतु अनित्य। यह महाभारतका सारभूत उपदेश 'भारत-सावित्री' के नामसे प्रसिद्ध है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका फल पाकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥

(१) सौराष्ट्रप्रदेश (काठियावाड़)-में श्रीसोमनाथ, (२) श्रीशैलपर श्रीमल्लिकार्जुन, (३) उज्जयिनी (उज्जैन)-में श्रीमहाकाल, (४) ॐकारेश्वर अथवा अमलेश्वर, (५) परलीमें वैद्यनाथ, (६) डाकिनी नामक स्थानमें श्रीभीमशंकर, (७) सेतुबन्धपर श्रीरामेश्वर, (८) दारुकावनमें श्रीनागेश्वर, (९) वाराणसी (काशी)-में श्रीविश्वनाथ, (१०) गौतमी (गोदावरी)-के तटपर श्रीत्र्यम्बकेश्वर, (११) हिमालयपर केदारखण्डमें श्रीकेदारनाथ और (१२) शिवालयमें श्रीघुश्मेश्वरको स्मरण करे। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्याके समय इन बारह ज्योतिर्लिंगोंका नाम लेता है, उसके सात जन्मोंका किया हुआ पाप इन लिंगोंके स्मरणमात्रसे मिट जाता है।

हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये।
नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्॥

रसोंके सारतत्त्वको जाननेवाली हे जिह्वे! तुम सदा मधुररसमें प्रीति रखनेवाली हो। हे जिह्वे! तुम नारायणनामामृतका निरन्तर पान करो।

सफलताके सोपान

[आदर्श जीवनचर्याका स्वरूप]

मनुष्य-जन्म लेकर प्राणीको अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है, कारण इस भवाटवीमें अनेक जन्मोंतक भटकनेके बाद अन्तमें यह मानवजीवन प्राप्त होता है। यहाँ प्राणी चाहे तो सदा-सर्वदाके लिये अपना कल्याण कर सकता है अथवा भगवत्प्राप्ति कर सकता है अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे भी मुक्त हो सकता है, परंतु इसके लिये अपने सनातन शास्त्रोंद्वारा निर्दिष्ट जीवनप्रक्रियाका अनुपालन करना पड़ेगा।

हमारे शास्त्र परमात्मप्रभुकी आज्ञा हैं तथा प्राणिमात्रके कल्याणके विधान हैं, भगवान् कहते हैं कि जो मेरी आज्ञाका उल्लंघन करता है, वह मेरा द्वेषी तथा वैष्णव होनेपर भी मेरा प्रिय नहीं है—

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान्‌की वाणी है, इसमें मुख्यरूपसे मनुष्यको कर्तव्यपालन करनेकी शिक्षा प्रदान की गयी है। गीतामें अर्जुनकी इस जिज्ञासापर कि कर्तव्य क्या है, इसका निर्णय कैसे किया जाय? भगवान्‌ने कहा—कर्तव्य (क्या करना चाहिये) और अकर्तव्य (क्या नहीं करना चाहिये)-की व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण हैं। यह समझकर हमें शास्त्रविधिसे ही अपना कर्म करना चाहिये—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६। २४)

भगवान् तो यहाँतक कहते हैं कि जो पुरुष शास्त्रविधिका त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त होता है, न उसे सुख मिलता है और न उसे परम गति ही प्राप्त होती है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६। २३)

शास्त्रकी परम्परामें जीवनके सभी क्रियाकलापोंके लिये विधि-निषेधका एक विधान बना हुआ है। जो इस विधानके अन्तर्गत अपने क्रियाकलापोंका सम्पादन करता है, वह वस्तुतः भगवान्‌की आज्ञाका पालन करता है, उसके वे सभी क्षण, जो अनिवार्यरूपसे दैनिक चर्या आदि कार्यकलापोंके सम्पादनमें लगते हैं, वे क्षण भी उसके पुण्यार्जनमें सहायक होते हैं। यदि भावना शुद्ध हो तो सभी कार्यकलाप भगवदाराधनके रूपमें परिणत हो जाते हैं।

यदि अपने २४ घण्टेके समयमें २ घण्टेका समय भगवान्‌की पूजा तथा परमार्थके शुभ कार्योंमें लगाया तो शुभकार्यका पुण्य हमें अवश्य प्राप्त होगा, परंतु साथ ही यह प्रश्न उठता है कि बचे हुए २२ घण्टेका समय हमने किस रूपमें बिताया। यदि यह समय अशास्त्रीय निषिद्ध भोगविलासमें तथा उन भोग्यपदार्थोंके साधन-संचयमें असत्य और बेईमानीका आश्रय लेकर लगाया तो उसका पाप भी अवश्य भोगना पड़ेगा। इस प्रकार पुण्य कम और पाप बहुत अधिक होनेके कारण ही जीव पशु-पक्षी, तिर्यक् आदि चौरासी लाख योनियोंमें भटकने लगता है, इसलिये भगवत्कृपासे मनुष्ययोनि प्राप्त होनेपर अत्यधिक सावधानीकी आवश्यकता है। जो अपना सर्वविध कल्याण चाहते हैं, उन्हें शास्त्रकी विधिके अनुसार अपनी जीवनचर्या एवं दैनिक चर्या बनानी चाहिये। यह मनुष्यमात्रका धर्म है और उसका कर्तव्य है। परंतु इसका पुण्यलाभ अदृष्ट है अर्थात् प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देता। मृत्युके बाद भी शाश्वत रूपमें इसका फल प्राप्त होता रहता है।

आजकल भौतिकविज्ञान एवं आधुनिक वातावरणसे प्रभावित कई लोग किसी भी कार्यको करनेमें दृष्टलाभकी अर्थात् प्रत्यक्ष दीखनेवाले लाभकी अपेक्षा करते हैं। वास्तवमें संसारमें दीखनेवाली सभी वस्तुएँ और पदार्थ अनित्य और असत्य हैं अर्थात् ये समाप्त होनेवाले हैं। इसलिये इन्हें अनात्म पदार्थ कहा जाता है, जबतक जीवन है तभीतक इनका उपयोग है, बादमें सब यहाँ ही छूट जानेवाले हैं। इनका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है। परमात्मप्रभु ही सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं, जो प्रायः इन भौतिक आँखोंसे नहीं दीखते, अतः परमात्मप्रभुकी प्राप्ति ही मनुष्यका शाश्वत कल्याण है।

इस दृष्टिसे धार्मिक कार्यक्रमोंका मुख्य फल अदृष्ट ही है, जो प्रायः दीखता नहीं अर्थात् दूसरे जन्मोंमें भी प्राप्त

होता है, परंतु साथ ही गौणफल दृष्ट भी है अर्थात् लौकिक उन्नति जो प्रत्यक्ष दीखती है और अनुभवमें आती है, इसीलिये धर्मकी परिभाषामें कहा गया—'**यतोऽभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**'

इस वाक्यमें धर्मके दो फल बताये गये हैं—१-लौकिक अभ्युदय—उन्नति, २-अलौकिक निःश्रेयस—कल्याण, जिसका फल दूसरे जन्ममें भी प्राप्त होता है।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि कोई व्यक्ति केवल भौतिक लाभको उद्देश्य बनाकर वैज्ञानिक उपयोगिताके आधारपर विधि-निषेधका पालन करता है तो उसे लौकिक लाभ तो प्राप्त होगा, परंतु वह आध्यात्मिक लाभसे वंचित हो जायगा। उदाहरणार्थ—कोई व्यक्ति गंगाजल तथा तुलसीदलकी रोगनाशकतारूप उपयोगिताको भौतिक रूपसे जानकर सेवन करता है, उसे केवल रोगनाशरूप लौकिक गौणफलकी ही प्राप्ति होगी। गंगाजल भगवान्के चरणकमलका चरणोदक है, स्नान-पानद्वारा पापनाशक, अन्तःकरणशोधक तथा भगवत्प्रसादरूप है—इन श्रद्धापूर्ण भावनाओंसे होनेवाला अलौकिक मुख्य फल उसे नहीं प्राप्त होगा; क्योंकि जबतक लक्ष्य नहीं बनता तथा श्रद्धापूर्ण भावना नहीं होती, तबतक अलौकिक फलकी प्राप्ति नहीं होती। वेद-शास्त्रकी आज्ञा मानकर गंगाजलका स्नान-पान करनेसे उक्त अलौकिक फल तो मुख्यरूपसे प्राप्त होता है, किंतु रोगनाशक लौकिक गौणफल भी प्राप्त हो जाता है। कारण, रोगनाशरूप गुण गंगाजलकी वस्तुशक्तिमें स्वाभाविक रूपसे विद्यमान रहता है। उसमें भावनाकी अपेक्षा नहीं होती।

अतः अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको भगवान्की आज्ञा मानकर प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त उद्देश्य बनाकर शास्त्रद्वारा प्रतिपादित विधि-निषेधका पालन करते हुए अपनी जीवनचर्या एवं दैनिक चर्या बनानी चाहिये। इससे अभ्युदय तथा निःश्रेयस—लौकिक और अलौकिक—दोनों फलोंकी प्राप्ति स्वाभाविक रूपसे होगी।

आधुनिक वातावरणमें लोगोंको कई प्रकारकी आवश्यकताएँ तथा अपेक्षाएँ रहती हैं, वे शास्त्रोक्त विधि-निषेधके पालन करनेमें सशंकित रहते हैं तथा अपने कार्यकलापोंसे भौतिक लाभ प्राप्त करनेकी अपेक्षा करते हैं। अपने ऋषि-महर्षियोंद्वारा प्रणीत जीवनचर्याके सिद्धान्तोंका पालन करनेसे आध्यात्मिक लाभ तो है ही; उसके साथ भौतिक लाभ भी प्राप्त है। अतः यहाँ शास्त्रोक्त दैनिक चर्या एवं जीवनचर्याकी प्रस्तुति वैज्ञानिक रीतिसे मनमें उठनेवाली शंकाओंका समाधान करते हुए की जा रही है—जिसका पालन कर्तव्यबुद्धिसे करनेपर लोक-परलोक दोनों सुधर सकते हैं अर्थात् लोकमें तो व्यक्ति स्वस्थ रहकर सुखी हो सकता है और परलोकमें पुण्यकी प्राप्तिकर अपने कल्याणपथका पथिक बन सकता है।

आचारः परमो धर्मः

आचार-विचार परम धर्म है। सदाचारमें लगे मनुष्यका शरीर स्वस्थ, मन शान्त और बुद्धि निर्मल होती है एवं उसका अन्तःकरण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है। शुद्ध अन्तःकरण ही वस्तुतः भगवान्के चिन्तन और ध्यानके योग्य होता है, उसीमें भगवान्का स्थिर आसन लगता है। इसलिये मनुष्यको शास्त्रोक्त आचार जानना चाहिये और उसका पालन करना चाहिये। मनु महाराज कहते हैं—

'श्रुति और स्मृतिमें कथित अपने नित्य कर्मोंके अंगभूत धर्मका मूल—सदाचारका सावधानीपूर्वक सेवन करना चाहिये। आचार-धर्मका पालन करनेसे मनुष्य आयु, इच्छानुरूप सन्तति और अक्षय धनको प्राप्त करता है, इतना ही नहीं; अल्पमृत्यु आदिका भी नाश होता है, जो पुरुष दुराचारी है, उसकी लोकमें निन्दा होती है, वह सदा दुःख भोगता रहता है तथा रोगी और अल्पायु (कम उम्रवाला) होता है। विद्या आदि सद्गुणोंसे हीन पुरुष भी यदि सदाचारी और श्रद्धावान् तथा ईर्ष्यारहित होता है तो वह भी सौ वर्षोंतक जीता है।'*

यहाँ श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थोंके आधारपर तथा वर्तमान आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर शास्त्रोक्त दिनचर्या तथा जीवनचर्या प्रस्तुत है, जिसका पालन करनेपर स्वास्थ्य आदि भौतिक लाभके साथ-साथ आध्यात्मिक और पारमार्थिक लाभकी प्राप्ति भी हो सकेगी।

---

* श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु। धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः। आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः। श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति॥ (मनु० ४। १५५—१५८)

दिनचर्या

प्रात:जागरण

पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिये कल्याणकामी व्यक्तिको प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्तमें (अर्थात् सूर्योदयसे ३ घंटेसे ११/२ घण्टे पूर्वतक) शय्याका त्याग करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्त तथा उष:कालकी बड़ी महिमा है, इस समय उठनेवालेका स्वास्थ्य, धन, विद्या, बल और तेज बढ़ता है, जो सूर्योदयके समय सोता है, उसकी उम्र और शक्ति घटती है तथा वह नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार होता है।

आयुर्वेदशास्त्रमें यह बताया गया है कि ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेसे वर्ण, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, स्वास्थ्य तथा आयुकी प्राप्ति होती है, उसका शरीर कमलकी तरह प्रफुल्लित हो जाता है।

वर्णं कीर्तिं मतिं लक्ष्मीं स्वास्थ्यमायुश्च विन्दति।
ब्राह्मे मुहूर्ते सञ्जाग्रच्छ्रियं वा पङ्कजं यथा॥

(भै० सार० ९३)

धर्मशास्त्रोंमें भी कहा है कि **'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत'** अर्थात् सभीको ब्राह्ममुहूर्तमें उठ जाना चाहिये। इस समय वायु अत्यन्त शीतल तथा मधुर होती है। यह समय ब्रह्मका चिन्तन करनेके लिये सर्वोत्तम है, इसीलिये इसे ब्राह्ममुहूर्त कहा जाता है। वैसे इस समय जो भी कार्य किया जाय, वह बहुत अच्छा होता है। इस समयमें चन्द्रकिरणोंसे अमृतका क्षरण होता है, इसलिये इस कालको अमृतवेला भी कहा जाता है।

करदर्शन

प्रात:काल उठते ही शयन-शय्यापर सर्वप्रथम करतल (दोनों हाथोंकी हथेलियों)-के दर्शनका विधान है। करतलका दर्शन करते हुए निम्नलिखित श्लोकका पाठ करना चाहिये—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

इस श्लोकमें धनकी अधिष्ठात्री लक्ष्मी, विद्याकी अधिष्ठात्री सरस्वती तथा कर्मके अधिष्ठाता ब्रह्माकी स्तुति की गयी है। इस मन्त्रका आशय है कि मेरे कर (हाथ)-के अग्रभागमें भगवती लक्ष्मीका निवास है, कर (हाथ)-के मध्यभागमें सरस्वती तथा कर (हाथ)-के मूलभागमें ब्रह्मा निवास करते हैं। प्रभातकालमें मैं हथेलियोंमें इनका दर्शन करता हूँ। इससे धन तथा विद्याकी प्राप्तिके साथ-साथ कर्तव्यकर्म करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। भगवान् वेदव्यासने करोपलब्धिको मानवका परम लाभ माना है। भगवान्ने हमें विवेकशक्ति इसलिये प्रदान की है कि हम अपने हाथोंसे सदा सत्कर्म करते रहें। करावलोकनके विधानका आशय यह भी है कि प्रात:काल उठते ही दृष्टि कहीं और न जाकर अपने करतलमें ही देवदर्शन करे, जिससे वृत्तियाँ भगवच्चिन्तनकी ओर प्रवृत्त हों, बुद्धि सात्त्विक बनी रहे तथा पूरा दिन शुभ कार्योंमें बीते।

भूमिवन्दना

इस प्रकार करदर्शनके अनन्तर व्यक्तिको चाहिये कि वह पृथ्वीमाताकी वन्दना करे। पृथ्वी सबकी माता हैं, धरित्री हैं, उन्होंने सबको धारण कर रखा है, वे सभीके लिये पूज्य हैं, वन्द्य हैं तथा आराधनाके योग्य हैं। भगवान् विष्णुकी दो पत्नियाँ हैं—१-महादेवी लक्ष्मी (श्रीदेवी) तथा दूसरी हैं भूदेवी (पृथ्वी)। निद्रा-परित्यागके अनन्तर चूँकि हमें अपने शयनके आसनसे भूमिपर उतरना है तो पाँव रखना पड़ेगा और अपनी माताके ऊपर कौन ऐसा है, जो पाँव रखेगा? परंतु पाँव रखे बिना भी आगेके कर्म सम्पादित होने असम्भव हैं। अत: इसी विवशताके कारण पृथ्वीमाताकी सर्वप्रथम वन्दना की जाती है और निम्नलिखित प्रार्थनाके द्वारा उनसे क्षमा माँगी जाती है, भूमिपर पाँव रखनेसे पूर्व निम्न श्लोक पढ़ना चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

इसका भाव यह है कि हे पृथ्वीदेवि! आप समुद्ररूपी वस्त्रोंको धारण करनेवाली हैं, पर्वतरूपी स्तनोंसे सुशोभित हैं तथा भगवान् विष्णुकी आप पत्नी हैं, आपको नमस्कार है, मेरे द्वारा होनेवाले पादस्पर्शके लिये आप मुझे क्षमा करें।

मंगल-दर्शन एवं गुरुजनोंका अभिवादन

प्रात:-जागरणके बाद यथासम्भव सर्वप्रथम मांगलिक वस्तुएँ (गौ, तुलसी, पीपल, गंगा, देवविग्रह आदि) जो भी उपलब्ध हों, उनका दर्शन करना चाहिये तथा घरमें माता-पिता एवं गुरुजनों, अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करना चाहिये। अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करनेका बड़ा लाभ है। अभिवादन

(प्रणाम) करनेवाले तथा नित्य वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करनेवाले पुरुषकी आयु, विद्या, कीर्ति और शक्ति (बल)—इन चारोंकी वृद्धि होती है।[१] अपने दोनों हाथोंको एक-दूसरेपर रखते हुए दाहिने हाथसे दाहिने पैरका तथा बायें हाथसे बायें पैरका स्पर्श करता हुआ अभिवादन करे। विज्ञानकी दृष्टिसे मनुष्यके शरीरमें रहनेवाली विद्युत्-शक्ति पृथ्वीके आकर्षणद्वारा आकृष्ट होकर पैरोंसे निकलती रहती है। दाहिने हाथसे दाहिने पैर और बायें हाथसे बायें पैरका स्पर्श करनेपर वृद्ध पुरुषके शरीरकी विद्युत्-शक्तिका प्रवेश प्रणाम करनेवाले पुरुषके शरीरमें सुगमतासे हो जाता है। इस विद्युत्-शक्तिके साथ वृद्ध पुरुषके ज्ञानादि सद्गुणोंका भी प्रवेश हो जाता है। विद्युत्-शक्ति मुख्यरूपसे पैरोंद्वारा निकलती है, इसलिये पैर ही छुए जाते हैं, सिर आदि नहीं। वृद्ध पुरुषोंको नित्य प्रणाम करनेसे वे प्रसन्न होकर अपने दीर्घकालीन जीवनमें सम्पादन किये हुए ज्ञानका दान प्रणाम करनेवालेको देते हैं। इस प्रकार ज्ञान-दानद्वारा प्रत्यक्षरूपमें और विद्युत्-शक्ति-प्रवेशद्वारा अप्रत्यक्षरूपमें उनके गुणोंकी प्राप्ति प्रणाम करनेवाले व्यक्तिको प्राप्त हो जाती है।

देवताओं तथा महापुरुषोंका स्मरण

प्रातःकाल उठनेके बाद शौचादि कृत्यसे निवृत्त होकर अथवा इसके पूर्व हाथ, मुँह धोकर कपड़े बदलकर अपने इष्टदेवका, देवताओंका तथा महापुरुषोंका स्मरण तथा उनकी प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रातःस्मरणीय श्लोक

प्रातःस्मरणीय श्लोकोंका प्रातःकाल पाठ करनेसे बहुत कल्याण होता है, जैसे—१-दिन अच्छा बीतता है, २-दुःस्वप्न, कलिदोष, शत्रु, पाप और भवके भयका नाश होता है, ३-विषका भय नहीं होता, ४-धर्मकी वृद्धि होती है, अज्ञानीको ज्ञान प्राप्त होता है, ५-रोग नहीं होता, ६-पूरी आयु मिलती है, ७-विजय प्राप्त होती है, ८-निर्धन धनी होता है, ९-भूख-प्यास और कामकी बाधा नहीं होती तथा १०-सभी बाधाओंसे छुटकारा मिलता है इत्यादि।

इसके साथ ही स्वयंमें दैवी गुणोंका आधान तथा महापुरुषोंके गुणोंको जीवनमें धारण करनेकी प्रेरणा मिलती है। इसी मनोविज्ञानके आधारपर प्रातःकाल उनके स्मरणका विधान किया गया है। प्रातःस्मरणके कुछ श्लोक मंगलाचरणके साथ प्रारम्भमें दिये गये हैं, जिन्हें देखना चाहिये।

कर्मोंद्वारा भगवदाराधना

भगवद्गीतामें भगवान्‌ने यह आदेश दिया है कि **'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः'** अपने कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा सम्पन्न होनेपर लक्ष्यकी प्राप्ति हो जाती है। इसकी प्रक्रियाके रूपमें भगवान्‌ने अर्जुनको यह भी उपदेश दिया कि **'मामनुस्मर युध्य च'** अर्थात् मेरा स्मरण करते हुए युद्धरूपी अपने कर्मका सम्पादन करो। यह जगत्‌के सभी मनुष्योंके लिये भगवान्‌का उपदेश है। अतः संकल्परूपमें भगवान्‌से यह प्रार्थना करनी चाहिये।

हे परमात्मन्! श्रुति और स्मृति आपकी ही आज्ञाएँ हैं।[२] आपकी इन आज्ञाओंके पालनके लिये मैं इस समयसे लेकर सोनेतक सभी कार्य करूँगा। इससे आप मुझपर प्रसन्न हों; क्योंकि आज्ञापालनसे बढ़कर स्वामीकी और कोई सेवा नहीं होती। आपकी यह आज्ञा है कि काम करनेके साथ-साथ मैं आपका स्मरण[३] करता रहूँ। तदनुसार यथासम्भव आपका स्मरण करता हुआ और नाम लेता हुआ काम करता रहूँगा तथा उन्हें आपको समर्पित भी करता रहूँगा। इस कर्मरूप पूजासे आप प्रसन्न हों।

इस प्रकार निम्न प्रार्थना करके अपनी दैनिक चर्या प्रारम्भ करनी चाहिये।

हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये।
नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्॥
त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव
श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं
संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥

भाव यह है कि हे जिह्वे! तुम सभी रसोंके तत्त्वको जाननेवाली हो तथा सर्वदा मधुर रस ही तुम्हें प्रिय है। अतः हे जिह्वे! तुम नारायणरूपी नामामृतका निरन्तर पान करती रहो। हे तीनों लोकोंके चैतन्यस्वरूप आदिदेव विष्णो! प्रातःकाल उठकर मैं आपकी आज्ञासे ही आपकी प्रसन्नता प्राप्त

१-अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥
२-श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे०। (वाधूलस्मृ० १८९, ब्रह्मपु०, आचारेन्दु)
३-(क) मामनुस्मर युध्य च। (गीता ८।७)
(ख) कर्मकालेऽपि सर्वत्र स्मरेद् विष्णुं हविर्भुजम्। तेन स्यात् कर्म सम्पूर्णं तस्मै सर्वं निवेदयेत्॥ (आश्वलायन)

करनेके लिये सांसारिक कार्योंमें प्रवृत्त होने जा रहा हूँ।

इस प्रार्थनामें अपनी दैनिक चर्या प्रारम्भ करनेके पूर्व भगवान्‌की आज्ञा प्राप्त की जाती है तथा उनकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये हम अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं।

अजपाजप[१]

सामान्यतया प्रत्येक स्वस्थ मनुष्यके चौबीस घंटेमें २१६०० श्वास आते हैं। सन्तों-महात्माओंकी यह आज्ञा है कि कम-से-कम इतना नाम-जप प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन करना चाहिये। इसके लिये शास्त्रने एक बड़ा सुगम साधन बताया है—अजपाजप। इस साधनसे पता चलता है कि जीवपर भगवान्‌की कितनी असीम अनुकम्पा है। अजपाजपका संकल्प कर लेनेपर २४ घंटेमें एक क्षण भी व्यर्थ नहीं हो पाता। चाहे हम जागते हों, स्वप्नमें हों या सुषुप्तिमें हों—प्रत्येक स्थितिमें 'हंस'[२] का जप श्वासक्रियाद्वारा अनायास होता ही रहता है। संकल्प कर देनेमात्रसे यह जप उस व्यक्ति (मनुष्य)-द्वारा किया हुआ माना जाता है।[३]

(क) किये हुए अजपाजपके समर्पणका संकल्प—**'ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णु अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारतवर्षे ''''स्थाने ''''नामसंवत्सरे ''''ऋतौ ''''मासे ''''पक्षे ''''तिथौ ''''दिने प्रातःकाले ''''गोत्रः ''''शर्मा (वर्मा/गुप्तः) अहं ह्यस्तनसूर्योदयादारभ्य अद्यतनसूर्योदयपर्यन्तं श्वासक्रियया भगवता कारितं 'अजपागायत्रीजपकर्म' भगवते समर्पये। ॐ तत्सत् श्रीब्रह्मार्पणमस्तु।'**

(ख) आज किये जानेवाले अजपाजपका संकल्प—किये गये अजपाजपको भगवान्‌को अर्पितकर आज सूर्योदयसे लेकर कल सूर्योदयतक होनेवाले अजपाजपका संकल्प करे—'**ॐ विष्णु**' से प्रारम्भकर ....'**अहं**' तक बोलनेके बाद आगे कहे—**अद्य सूर्योदयादारभ्य श्वस्तनसूर्योदयपर्यन्तं षट्शताधिकैकविंशतिसहस्र (२१६००)-संख्याकोच्छ्वासनिःश्वासाभ्यां हंसं सोऽहंरूपाभ्यां गणेशब्रह्मविष्णुमहेशजीवात्मपरमात्मगुरुप्रीत्यर्थमजपागायत्रीजपं करिष्ये।**

संस्कृत भाषाके संकल्पको उच्चारण करनेमें असुविधा हो तो मानसिक संकल्प भी किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वासके साथ सहज होनेवाले हंस मन्त्रके जपको भगवान्‌को भावपूर्वक मनसे समर्पित कर देना चाहिये तथा दूसरे दिनका प्रतिज्ञा-संकल्प भी मानसिक कर लेना चाहिये।

उषःपान

आयुर्वेदके अनुसार प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्व तथा शौचसे पहले जल पीनेकी विधि भी है। रात्रिमें ताम्रपात्रमें ढँककर रखा हुआ जल प्रातःकाल कम-से-कम आधा लीटर अथवा सम्भव हो तो सवा लीटरतक पीना चाहिये, इसे उषःपान कहा जाता है, इससे कफ, वायु एवं पित्त (त्रिदोष)-का नाश होता है तथा व्यक्ति बलशाली एवं दीर्घायु होता है, मल साफ होता है, पेटके विकार दूर होते हैं। भारतीय शास्त्रोंमें कही गयी सभी बातें वैज्ञानिक हैं, धार्मिक हैं और ऐसी भी बातें बतायी गयी हैं, जो विज्ञानकी कल्पनासे भी बाहर हैं।

शौचाचार

इसके बाद मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग करते समय सिरको कपड़ेसे ढक लेना चाहिये अथवा जनेऊको बायें कानसे सटाकर सिरके ऊपरसे दाहिने कानमें लपेट लेना चाहिये। इस क्रियासे रक्त तथा वायुकी गति अधोमुखी होनेसे मलत्यागमें सहायता मिलती है और शरीरके उत्तम तथा पवित्र अंग सिर आदिकी मलके परमाणुओंसे रक्षा होती है। शौचके समय

१-(क) 'न जप्यते, नोच्चार्यते (अपितु श्वासप्रश्वासयोर्गमनागमनाभ्यां सम्पाद्यते) इति अजपा।' (शब्दकल्पद्रुम) अर्थात् बिना जप एवं उच्चारण किये केवल श्वासके आने-जानेसे जो जप सम्पन्न होता है, उसे 'अजपा' कहते हैं।

(ख) अग्निपुराणमें बतलाया गया है कि श्वास-प्रश्वासद्वारा 'हंसः', 'सोऽहं' के रूपमें शरीरस्थित ब्रह्मका ही उच्चारण होता रहता है, अतः तत्त्ववेत्ता इसे ही 'जप' कहते हैं।

उच्चरति स्वयं यस्मात् स्वदेहावस्थितः शिवः। तस्मात् तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते॥ (२१४। २४)

२-(क) उच्छ्वासश्चैव निःश्वासो हंस इत्यक्षरद्वयम्। तस्मात् प्राणस्थहंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः॥

(ख) परमात्माको 'हंस' इसलिये कहा जाता है कि वह जीवोंके भटकावका हनन कर देता है—'हन्ति जीवसंसारमिति हंसः।' (उत्तरगीता १।५ में गौडपादाचार्य)

(ग) भगवान्‌ने हंसावतार धारण भी किया था। (देखिये श्रीमद्भा० ११।१३)

३-अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी। तस्याः संकल्पमात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः॥ (आचाररत्नमें अंगिरा, आचारभूषण)

ऊपर-नीचेके दाँतोंको जोरसे सटाकर रखना चाहिये, इससे दाँत मजबूत होते हैं, बहुत दिनोंतक चलते हैं, दाँतोंकी कोई बीमारी नहीं होने पाती। मल-मूत्रका त्याग करते समय मौन रहना चाहिये। चोटी (शिखा) खुली रखनी चाहिये एवं ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिये।

सामान्यतः पेशाब करके पानीसे मूत्रेन्द्रियको जरूर धोना चाहिये। मलत्यागके बाद मिट्टीसे गुदा आदि जरूर धो लें, इससे बवासीरकी बीमारी नहीं होती। शास्त्रानुसार लिंगको एक बार तथा गुदाको तीन बार मिट्टी लगाकर धो लेना चाहिये। बायें हाथको दस बार और दोनों हाथोंको मिलाकर सात बार तथा पैरको भी मिट्टीसे धोनेकी विधि है। शौचके बाद बारह कुल्ले तथा लघुशंकाके बाद चार कुल्ले करनेका विधान है।

परिस्थितिभेदसे शौचकी यह प्रक्रिया बदल जाती है। स्त्री और शूद्रके लिये तथा रातमें अन्योंके लिये भी यह आधी हो जाती है। यात्रा (मार्ग)-में चौथाई बरती जाती है। रोगियोंके लिये यह प्रक्रिया उनकी शक्तिपर निर्भर हो जाती है। शौचका उपर्युक्त विधान स्वस्थ गृहस्थोंके लिये है।[१]

साबुनसे शुद्धि नहीं—आजकल आधुनिक वातावरणमें मिट्टीके स्थानपर साबुनसे हाथ धोनेकी प्रक्रिया चल रही है, परंतु शास्त्रानुसार साबुनसे शुद्धि और पवित्रता नहीं होती। यह मिट्टीसे ही प्राप्त है। आजकल तो अधिकतर चर्बीयुक्त साबुन बनते हैं, जो और भी अशुद्ध हैं। इससे हाथ धोनेपर कभी-कभी स्वच्छताकी प्रतीति तो होती है, परंतु वास्तवमें पवित्रता प्राप्त नहीं होती। वैसे भी मलमें घृत-तेलकी तथा पित्तकी स्निग्धता—चिकनाहट मिली रहती है, उसकी शुद्धि रुक्ष तथा क्षारयुक्त मिट्टी या राखसे जितनी अच्छी तरह होती है, वैसी स्निग्ध साबुनसे नहीं होती।

आभ्यन्तर शौच[२]—मिट्टी और जलसे होनेवाला यह शौचकार्य बाहरी है, इसकी भी आवश्यकता है, किंतु आभ्यन्तर (आन्तरिक) शौचके बिना यह प्रतिष्ठित नहीं हो पाता। मनोभावको शुद्ध रखना आभ्यन्तर शौच माना जाता है। किसीके प्रति ईर्ष्या, राग-द्वेष, लोभ, मोह, मद-मात्सर्य, घृणा आदिके भावका न होना आभ्यन्तर शौच है। व्याघ्रपादका कथन है कि यदि पहाड़ जितनी मिट्टी और गंगाके समस्त जलसे जीवनभर कोई बाह्य शुद्धिकार्य करता रहे, किंतु उसके पास आन्तरिक शौच न हो तो वह शुद्ध नहीं हो सकता।[३] अतः आभ्यन्तर शौच अति आवश्यक है। भगवान् सबमें विद्यमान हैं, इसीलिये किसीसे द्वेष-क्रोधादि क्यों किया जाय? सबमें भगवान्का दर्शन करते हुए सभी परिस्थितियोंको भगवान्का वरदान समझते हुए सबमें मैत्रीभाव रखे, साथ ही प्रतिक्षण भगवान्का स्मरण करते हुए उनकी आज्ञा समझकर शास्त्रविहित कार्य करता रहे।

दन्तधावन

शौचनिवृत्तिके पश्चात् व्यक्तिको दातौन तथा मंजनसे दाँतोंको साफ करना चाहिये। आजकल दाँतोंको साफ करनेके लिये ब्रशका प्रयोग लोग अधिक करते हैं, परंतु नीम तथा बबूल आदिकी दातौन दाँतोंकी सुरक्षाके लिये अधिक लाभप्रद हैं। रविवार, एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, व्रत, श्राद्धादि दिनोंमें दातौन करनेका विधान नहीं है। अतः इन दिनोंमें केवल शुद्ध मंजनसे दाँत साफ करना श्रेयस्कर है। दाँत साफ करनेके बाद जीभीसे जीभ भी साफ करनी चाहिये।

व्यायाम तथा वायुसेवन

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये, कार्य करनेकी सामर्थ्य बनाये रखनेके लिये, पाचनक्रिया तथा जठराग्निको ठीक रखनेके लिये, शरीरको सुगठित, सुदृढ़ और सुडौल बनानेकी दृष्टिसे अपने आयु, बल, देश और कालके अनुरूप नियमित रूपसे योगासन एवं व्यायाम अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्यक्ति सामान्यतः बीमार नहीं होते और उन्हें औषधिसेवनकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती।[४]

सुबह और शामको नित्य खुली, ताजी और शुद्ध

१-स्त्रीशूद्रयोरर्धमानं शौचं प्रोक्तं मनीषिभिः। दिवा शौचस्य निश्यर्धं पथि पादो विधीयते॥
आर्तः कुर्याद् यथाशक्तिः शक्तः कुर्याद् यथोदितम्॥ (आचारभूषणमें आदित्यपुराण, दक्षस्मृति)

२-शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा। मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम्॥ (दक्षस्मृति ५।३)

३-गङ्गातोयेन कृत्स्नेन मृद्भारैश्च नगोपमैः। आमृत्योश्चाचरन् शौचं भावदुष्टो न शुध्यति॥
(आचारेन्दुमें व्याघ्रपाद, यही भाव दक्षस्मृतिका है।)

४-(क) लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः। विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते॥ (अ०हृ०सू० २।१०)
(ख) वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च॥ समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्। (सु०चि० २४।४८-४९)

हवामें अपनी शक्तिके अनुसार थकान न मालूम होनेतक साधारण चालसे घूमना चाहिये। नियमपूर्वक कम-से-कम दो-तीन किलोमीटरतक घूमना चाहिये। प्रौढावस्थामें टहलना भी एक प्रकारका व्यायाम है। नियमपूर्वक घूमनेके व्यायामसे और शुद्ध वायुसेवनसे शरीरको बहुत लाभ पहुँचता है। यह कार्य स्नानके बाद अथवा पूर्व दोनों प्रकारसे किया जा सकता है।

एक बात ध्यान रखनेकी है कि व्यायाम, योगासन अथवा टहलनेके समय भगवन्नाम-जप अथवा स्तोत्र-पाठादि अवश्य करना चाहिये, जिससे समयका आध्यात्मिक सदुपयोग होता रहे।

तैलाभ्यंग

आयुर्वेदशास्त्रमें शरीरकी आरोग्यता तथा मनकी प्रसन्नताके लिये तैलाभ्यंग (तेलमालिश) भी प्रतिपादित किया गया है। जरा, श्रम तथा वातके विनाशार्थ और शरीरकी दृढ़ता, पुष्टि और दृष्टिवृद्धिके लिये स्नानके पूर्व नित्य तेलकी मालिश करनी चाहिये। सिर, कान तथा पाँवके तलवोंमें तेलकी मालिशका विशेष लाभ है।[१] कानमें तेल डालनेसे कानके रोग, ऊँचा सुनना, बहरापन आदि विकार नहीं होते। सिरकी मालिशसे कानोंको और कानोंकी मालिशसे पाँवोंको लाभ पहुँचता है तथा पाँवोंकी मालिशसे नेत्ररोगोंका एवं नेत्रोंके अभ्यंगसे दन्तरोगोंका शमन होता है।[२] तेलमर्दनके विषयमें चरकने कहा है कि शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये अधिक वायुकी आवश्यकता है।[३] वायुका ग्रहण त्वचाके आश्रित है। त्वचाके लिये अभ्यंग तेलमालिश परमोपकारी है, इसलिये मालिश करनी चाहिये। साधारणतया तो यही माना जाता है कि वायुका ग्रहण केवल नासिकाद्वारा ही किया जाता है, किंतु वास्तविक बात यह है कि जितनी वायुका नाकसे ग्रहण किया जाता है, उतनी वायु शरीरके लिये पर्याप्त नहीं है, इसलिये शरीरमें त्वचाके रोमकूपोंसे ही शेष वायुकी पूर्ति होती है। इन रोमकूपोंको स्वच्छ, शुद्ध तथा खुला रखनेके लिये ही तेलमर्दनका मुख्य रूपसे विधान किया गया है। इसके अतिरिक्त तेलमर्दनसे त्वचा कोमल बनती है। तेलमालिशके लिये सरसोंका तेल अधिक उपयोगी है। धर्मशास्त्रमें एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या, सूर्यकी संक्रान्ति, व्रत तथा श्राद्ध आदिके दिन एवं रवि, मंगल, गुरु और शुक्रवारको तेल लगानेका निषेध है। किंतु यह निषेध तिल-तेलके लिये है। सरसोंके तेल तथा सुगन्धित तेलके लिये नहीं[४]—ब्रह्मचारी तथा संन्यासीके लिये तैलाभ्यंगका निषेध है।

क्षौर

शास्त्रोंमें क्षौरसम्बन्धी विचार विस्तारसे हुआ है। क्षौर कब करना चाहिये, कब नहीं करना चाहिये तथा क्यों नहीं करना चाहिये—इसपर अनेक प्रकारकी मीमांसा प्राप्त होती है। प्राचीन शास्त्रीय परम्पराको माननेवाले लोग इन बातोंका ठीक-ठीक पालन करते हैं, किंतु इसका फल अदृष्ट होनेसे कुछ आधुनिक लोग यह विचार नहीं रखते। सामान्यतः सोमवार, बुधवार, रविवार तथा शुक्रवार क्षौरकर्मके लिये प्रशस्त दिन माने गये हैं। एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, शनिवार, मंगलवार, बृहस्पतिवार, व्रतके दिन तथा श्राद्धादिके दिनोंमें बाल तथा दाढ़ी नहीं बनवानी चाहिये। जिस व्यक्तिको एक सन्तान हो, उसे सोमवारके दिन क्षौर निषिद्ध है।

स्नान

व्यक्तिको प्रतिदिन मन्त्रपूत स्वच्छ जलसे स्नान करना चाहिये। तभी वह सन्ध्यावन्दन, मन्त्रजप, स्तोत्र आदि पाठ तथा भगवद्दर्शन और चरणामृत-ग्रहण करनेका अधिकारी बनता है,[५] गंगा आदि पवित्र नदियोंमें, बहते हुए नद अथवा निर्मल जलवाले सरोवरमें स्नान करना भौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे सर्वोत्तम है। यदि ऐसा न हो सके तो सामान्य जलमें भी निम्न मन्त्रसे गंगादिका आवाहन करके स्नान करना चाहिये—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

---

१. अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा। दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुः स्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्॥
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्। (अ०हृ०सू० २।८-९)

२. न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनुसंग्रहः। नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णतर्पणात्॥ (च०सू० ५।८४)
मूर्ध्नोऽभ्यंगात् कर्णयोः शीतमायुः कर्णाभ्यंगात् पादयोरेवमेव। पादाभ्यंगान्नेत्ररोगान् हरेच्च नेत्राभ्यंगाद् दन्तरोगांश्च नश्येत्॥

३. स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितम्। त्वच्यश्च परमभ्यङ्गस्तस्यात्तं शीलयेन्नरः॥ (चरकसंहिता सू० ५।८७)

४. सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम्। अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन॥ (निर्णयसिन्धु)

५. स्नानं प्रतिदिनं कुर्यान्मन्त्रपूतेन वारिणा। प्रातःस्नानेन योग्यः स्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु॥

टंकीमें जमा किये हुए नलके जलकी अपेक्षा कुएँसे निकाला हुआ जल, कुएँके निकाले हुए जलसे झरनेका जल, झरनेके जलसे सरोवरका जल, सरोवरके जलसे नदीका जल, नदीके जलसे तीर्थका जल, तीर्थके जलसे गंगाजीका जल अधिक श्रेष्ठ माना गया है।[१] उषाकी लालीके पहले ही स्नान करना उत्तम माना गया है।[२] इससे प्राजापत्यव्रतका फल प्राप्त होता है।[३] तेल तथा शरीरको मल-मलकर नदीमें नहाना मना है। अतः नदीसे बाहर तटपर ही देह मलकर नहा ले तब नदीमें गोता लगाये।[४] शास्त्रोंने इसे मलापकर्षणस्नान कहा है।

शरीरको अँगोछे तथा हाथसे मल-मलकर खूब नहाना चाहिये। नहाते समय ऐसा निश्चय करे कि मेरे शरीरके मैलके साथ ही मनका मैल भी धुल रहा है और इस समय भगवान्‌के नामका उच्चारण अवश्य करते रहना चाहिये।

अपने शास्त्रोंमें सात प्रकारके स्नान बताये गये हैं—१-मन्त्रस्नान—**आपो हि ष्ठा०** इत्यादि मन्त्रोंसे मार्जन करना मन्त्रस्नान है, २-भौमस्नान—समस्त शरीरमें मिट्टी लगाना, ३-अग्निस्नान—भस्म लगाना, ४-वायव्यस्नान—गायके खुरकी धूलि लगाना, ५-दिव्यस्नान—सूर्यकिरणमें वर्षाके जलसे स्नान करना, ६-वारुणस्नान—जलमें डुबकी लगाकर स्नान करना, ७-मानसिक स्नान—आत्मचिन्तन करना मानसिक स्नान है।[५]

इस प्रकार प्रातःकालीन स्नान नित्यचर्याका प्रमुख अंग है; क्योंकि आगेकी सभी धर्मकर्मादि क्रियाएँ स्नानमूलक ही हैं। गंगादि नदियोंमें मौसल स्नान करना चाहिये अर्थात् खड़े होकर सीधे डुबकी लगानी चाहिये, शरीर मलना नहीं चाहिये। कई लोग गंगाजीमें कुल्ला करते हैं तथा साबुन लगाकर स्नान करते हैं, ऐसा करनेसे प्रत्यवाय बनता है और जल भी दूषित हो जाता है, अतः इससे बचना चाहिये।

अशक्तोंके लिये स्नान—स्नानमें असमर्थ होनेपर सिरके नीचेसे ही स्नान करना चाहिये अथवा गीले वस्त्रसे शरीर पोंछ लेना भी एक प्रकारका स्नान कहा गया है। अधिक अस्वस्थतामें हाथ-पैर, मुँह आदि धोकर कपड़े बदलनेपर भी स्नानकी विधि पूरी हो जाती है।

वस्त्रधारण

वस्त्रधारणका मुख्य उद्देश्य शरीररक्षा तथा लज्जानिवारण है। अतः स्थान और कालको दृष्टिमें रखकर शरीररक्षाके लिये स्त्री-पुरुषोंके अंगोंकी बनावट और कोमलता तथा कठोरताको दृष्टिमें रखकर विभिन्न प्रकारके वस्त्र धारण करनेका विधान शास्त्रोंने किया है। भारतीय संस्कृतिमें मुख्य रूपसे पुरुषोंके लिये वस्त्रके रूपमें धोती पहननेका निर्देश है। धुले हुएको धौत कहते हैं, धौतका ही अपभ्रंश धोती बन गया है। प्रतिदिन धोये जानेके कारण ही धोती नाम पड़ा है। स्नान करनेके बाद धुला वस्त्र ही पहनना चाहिये। आजकल पैंट-कोट आदि पहननेका प्रचलन बढ़ता जा रहा है। यह पाश्चात्य देशोंका अन्धानुकरण है। पैंट आदि प्रतिदिन न धोये जानेके कारण अशुद्ध रहते हैं।

भारतवर्ष उष्ण देश है। यहाँ ८-९ महीने गरमी पड़ती है। अतः धोती पहननेका तात्पर्य यह भी है कि शरीरका आच्छादन भी हो जाय और शरीरमें हवा भी लगती रहे। इसी प्रकार स्त्रियोंके लिये साड़ी-ब्लाउज तथा चद्दर आदिका विधान है।

कम-से-कम पूजा आदिके समय तथा भोजनके समय धोती अवश्य बाँधनी चाहिये। लुंगीकी तरह न बाँधकर कच्छ (लाँग) लगाकर बाँधनेकी विधि है। बिना लाँग बाँधे पूजा आदि करनेका निषेध है[६] **'मुक्तकच्छो महाधमः।'**

नीला वस्त्र धारण करनेका भी निषेध किया गया है। आपस्तम्बऋषिने कहा है—

---

१. निपानादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्। ततोऽपि सारसं पुण्यं ततो नादेयमुच्यते॥
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गङ्गातोयं ततोऽधिकम्॥ (अग्निपुराण)

२. उषःकालस्तु लोहितादिगुणलक्षितकालात् प्राक्कालः। (कल्पतरु)

३. उषस्युषसि यत् स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ। प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम्॥ (दक्षस्मृ० २। ११)

४. मलं प्रक्षालयेत्तीरे ततः स्नानं समाचरेत्। (मेधातिथि)

५. मान्त्रं भौमं तथाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च। वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानान्यनुक्रमात्॥
आपो हि ष्ठादिभिर्मान्त्रं मृदालम्भस्तु पार्थिवम्। आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम्॥
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद् दिव्यमुच्यते। अवगाहो वारुणं स्यात् मानसं ह्यात्मचिन्तनम्॥ (आचारम०, प्रयोगपारिजात)

६. अकच्छस्य द्विकच्छस्य अशिखो शिखवर्जितः। पाककर्ता हव्यग्राही षडैते ब्राह्मणाधमाः॥ (स्मृतिवचन)

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात्॥

(६।३)

जो नील वस्त्र धारण करके स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, पंचमहायज्ञ आदि कर्म करता है, उसके वे कर्म निष्फल हो जाते हैं।

ऊनी तथा रेशमी वस्त्र बिना धोये भी प्रयोगमें लिये जा सकते हैं। वे शुद्ध माने जाते हैं।

निष्कर्षरूपमें वस्त्रोंको धारण करनेसे सरदी, गरमी तथा लज्जानिवारण आदि मुख्य उद्देश्योंकी पूर्ति होती हो तथा शरीरविज्ञानानुसार कोई रोग उत्पन्न न होकर रोगोंका नाश होता हो एवं मनोविज्ञानानुसार भोग-विलास, कामुकता आदि मानसिकरोग उत्पन्न न होकर सादगी आदि सत्त्वगुण बढ़ते हों और आर्थिक, पारिवारिक तथा सामाजिक संकट उत्पन्न न करते हों—ऐसे वस्त्रोंको ही धारण करना चाहिये। इन सबपर विचार करके ऋषियोंने जैसे वस्त्र धारण करनेका विधान किया है, वैसे ही वस्त्र धारण करने चाहिये।

नहानेके बाद सिरके केशोंको कंघीसे ठीक कर लिया जाय, जिससे कोई जीव-जन्तु या कूड़ेका कण सिरपर न रहने पाये। सिरपर कंघी करनेसे बुद्धिका विकास होता है।

पूजा-विधान

स्नान आदिके अनन्तर सन्ध्यावन्दन, तर्पण तथा अपने इष्टदेवके पूजन करनेकी विधि है। शिखा (चोटी), सूत्र (जनेऊ)-के बिना जो देवकार्य किये जाते हैं, वे सदा निष्फल होते हैं—

'विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥'

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन द्विजातियोंको यज्ञोपवीत (जनेऊ) अवश्य धारण करना चाहिये। इसीसे वे सन्ध्यावन्दन तथा वैदिक देवपूजन कार्योंके अधिकारी होते हैं।

स्त्री एवं शूद्रके लिये यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करनेकी विधि नहीं है। वे केवल भगवन्नामका जप, कीर्तन एवं सेवाकार्यमें संलग्न रहें। उन्हें वही फल प्राप्त होगा, जो द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-को वैदिक कर्म करनेसे होगा।

पूजा किसी आसनपर ही बैठकर करनी चाहिये। लकड़ीकी चौकी, कुश, ऊनके आसनपर पूजाके लिये बैठनेका विधान है। देवपूजाके सभी कार्योंमें कुशके प्रयोगका विधान है तथा कुशासनको सर्वदोषरहित और सब मन्त्रोंकी सिद्धिमें सहायक कहा है।[1]

शास्त्रोंमें कुछ आसनोंके निषेध-वचन प्राप्त हैं। धरतीमें बैठनेपर दुःखकी उत्पत्ति, पत्थरपर बैठनेसे व्याधि और पीड़ा, केवल वस्त्रपर बैठनेसे जप, ध्यान और तपकी हानि होती है।[2]

आसनका एक दूसरा अर्थ भी है, पूजा-पाठमें सिद्धासन तथा पद्मासन आदि प्रशस्त माने गये हैं। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी इन आसनोंका महत्त्व है।

तिलक-धारण

पूजा-पाठ, भजन-ध्यान आदि कार्योंमें मनःशान्ति और एकाग्रताकी ही प्रधानता है। मनका स्थान मस्तिष्क है। अतः मनको स्वस्थ, शान्त और सात्त्विक रखनेकी दृष्टिसे माथेपर चन्दन, कपूर, केशर आदि पदार्थोंका लेप करना स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उत्तम है। इसी विज्ञानके अनुसार मनःप्रधान भजन-ध्यान, पूजा-पाठ आदि कार्य तथा दान, होम, तर्पण आदि सात्त्विक कर्मोंसे पूर्व तिलकको धारण करनेका विधान किया गया है तथा तिलक बिना इन कर्मोंको निष्फल बताया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा गया है—

स्नानं दानं तपो होमो देवतापितृकर्म च।
तत्सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना॥

धर्मशास्त्रमें कहा गया है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा धार्यं भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम्।
उभयं चन्दनेनैव सर्वेषु शुभकर्मसु॥

मृत्तिका (गोपीचन्दन)-से ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। सभी शुभ कर्मोंमें चन्दनसे दोनों प्रकारका तिलक किया जा सकता है।

कुमकुम (रोली)-का प्रयोग भी तिलकमें किया जाता है, विशेषकर सौभाग्यवती माताओंको कुमकुमका तथा सिन्दूरका तिलक ही करना चाहिये। सिन्दूरमें

१-भूमौ दर्भासने रम्ये सर्वदोषविवर्जिते। कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा॥

२-धरण्यां दुःखसम्भूतिः पाषाणे व्याधिपीडनम्। जपध्यानतपोहानिं वस्त्रासनं करोति हि॥

सर्वदोषनाशक शक्ति रहती है। तिलकके अतिरिक्त माँगमें सिन्दूर लगानेसे सिरके बालोंमें जूँ, लीखका भय नहीं रहता। इसलिये शास्त्रकारोंने इसे एक प्रकारसे सौभाग्यका चिह्न माना है। ऊपर लिखे तिलकके द्रव्योंमेंसे यदि कोई द्रव्य किसी समय पासमें न हो तो केवल शुद्ध जलसे भी तिलक करनेका विधान किया गया है, क्योंकि जल भी शोधक है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रके आदेशके अतिरिक्त तिलकके भौतिक गुणोंको समझकर भी तिलक अवश्य करना चाहिये।

शिखाबन्धन

भारतीय संस्कृति एवं सनातनधर्मके अनुसार सिरके पिछले भागपर शिखा (चोटी) अवश्य रखनी चाहिये। आध्यात्मिक विज्ञानके अनुसार तो जिस प्रकार किसी भवन तथा मन्दिरके शिखरपर ध्वजा लगायी जाती है, उसी प्रकार यह शरीर भी एक प्रकारका मन्दिर है, इसमें आत्मरूपसे परमात्मा निवास करते हैं। अतः इसके शिखरपर शिखा (चोटी)-रूपी ध्वजा होनी आवश्यक है। भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे जहाँ शिखा रखी जाती है, वहाँ मेरुदण्डके भीतर रहनेवाली ज्ञान तथा क्रियाशक्तिकी आधार सुषुम्णा नाड़ी समाप्त होती है। यह स्थान शरीरका सर्वाधिक मर्मस्थान है, इस स्थानपर चोटी रखनेसे मर्मस्थान सुरक्षित रहनेसे क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति सुरक्षित रहती है, जिससे भजन, ध्यान, दान आदि शुभ कर्म सुचारु रूपमें सम्पन्न होते हैं, इसीलिये धर्मशास्त्रोंमें कहा है—

ध्याने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

अमुक दिशामें मुख

प्रातःकालीन सन्ध्यावन्दनादि कर्मोंमें सूर्योपासना प्रधान होनेके कारण सूर्यके सम्मुख पूर्वकी ओर मुँह करके तथा सायंकालीन सन्ध्यामें पश्चिमकी ओर मुख करके सन्ध्योपासना करनी चाहिये। भौतिक दृष्टिसे प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञानानुसार प्रातःकाल तथा सायंकाल सूर्यकी किरणोंका सेवन हो जानेसे शारीरिक रोगोंका नाश होता है। धर्मशास्त्रोंमें देवकार्य पूर्वाभिमुख होकर और पितरोंका कार्य दक्षिणमुख होकर करनेका विधान है। उत्तरकी ओर मुख करके योगाभ्यास करनेका विधान भी किया गया है—

उत्तराभिमुखो भूत्वा……योगाभ्यासं स्थितश्चरन्॥

(त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् १८-१९)

इस प्रकार विशेष कार्योंके लिये दिशा-निर्देशका विधान विशेष विज्ञानका अनुसन्धान करके ही किया गया है। अतः उसी दिशामें मुख करके वह कर्म करना चाहिये।

सन्ध्या-तर्पण एवं इष्टदेवका पूजन

द्विजको यथासाध्य त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न तथा सायं) सन्ध्या करनी चाहिये। कम-से-कम दो कालोंकी सन्ध्या तो अवश्य ही करनी चाहिये। जो द्विज प्रतिदिन प्रमादवश सन्ध्या नहीं करता, वह द्विजकर्मोंसे बहिष्कार करनेयोग्य होता है और उसे भयानक नरक-यातना भोगनी पड़ती है।

रात्रिका अधिपति चन्द्रमा है, वही हमारे मनका देवता है, दिनका अधिपति सूर्य है, वही हमारे प्राणोंका संचालक है। मन तथा प्राणोंके सन्धिकालमें सत्त्वगुण बढ़ता है, ऐसी दशामें भजन, ध्यान, सन्ध्योपासना करना अति उत्तम माना जाता है, यही कारण है कि दोनों सन्ध्याओंमें सन्ध्योपासना करनेका अनिवार्य विधान है। **'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'** (वेद)। द्विजको वैदिक मन्त्रोंसे प्रातः तथा सायं सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिये।

स्त्री तथा शूद्रोंको भी वैदिक मन्त्रोंके बिना पौराणिक मन्त्रोंसे अथवा बिना किसी मन्त्रके केवल भगवन्नामका उच्चारण करते हुए भगवान्‌की उपासना करनी चाहिये। उपासनाके लिये यह समय अति उपयोगी होनेके कारण इस समय दूसरे कर्म करनेका शास्त्रोंने निषेध किया है।

संकल्प—आसनपर बैठकर तिलकधारण और शिखाबन्धन करनेके बाद संकल्प करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण कर्मोंकी सफलतामें दृढ़ संकल्पका सर्वाधिक माहात्म्य है। मनुस्मृति (२।३)-में कहा है कि समस्त कामनाएँ, यज्ञ, व्रत, नियम, धर्म संकल्पजन्य ही हैं—

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥*

प्राणायाम

भजन, ध्यान, पाठ, पूजा आदि सात्त्विक कार्योंके लिये शान्त और सात्त्विक मनकी परम आवश्यकता होती है। प्राणायामद्वारा प्राणकी समगति (दो स्वरोंसे बराबर चलना) होनेपर मन शान्त और सात्त्विक हो जाता है। यही प्राणायामका आध्यात्मिक प्रयोजन है। प्राणायामसे शारीरिक लाभ भी है। हमारा जीवन श्वास-प्रश्वासरूप प्राणोंकी गतिपर आधारित है। इस कार्यको जिन फेफड़ोंद्वारा किया

* सन्ध्या-वन्दनकी वैदिक प्रक्रिया तथा संकल्प इत्यादि गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित 'नित्यकर्मपूजाप्रकाश' पुस्तकमें देख सकते हैं।

जाता है, उनकी स्थिति-स्थापक शक्तिकी रक्षा आवश्यक है। यह कार्य प्राणायामसे सम्यक् हो जाता है।

भिन्न-भिन्न प्रकारके लाभोंके लिये शास्त्रोंमें विभिन्न प्रकारके प्राणायाम करनेका विधान किया गया है। सन्ध्योपासनाके अंगरूपमें किये जानेवाले प्राणायामकी सामान्य विधि निम्न प्रकार है—आसनपर बैठकर नाकके बायें छिद्रसे लगभग ८ सेकेण्डतक वायुको खींचे (इसे पूरक प्राणायाम कहते हैं), नासिकाके दोनों छिद्रोंको बन्दकर लगभग १६ सेकेण्डतक श्वासको रोके रहे (इसे कुम्भक कहते हैं), फिर नाकके दाहिने छिद्रसे लगभग १६ सेकेण्डमें धीरे-धीरे श्वासका त्याग करे (यह रेचक प्राणायाम कहलाता है)। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे एक बार बायें छिद्रसे श्वास खींचकर दायेंसे छोड़े, दूसरी बार दायेंसे खींचकर बायेंसे छोड़े, इसे अनुलोम-विलोम प्राणायाम कहते हैं।

सन्ध्यावन्दनमें आचमन, सूर्यार्घ एवं सूर्योपस्थान

सन्ध्यावन्दनके अन्तर्गत कई बार आचमन करनेका विधान है तथा सभी धार्मिक कृत्योंके प्रारम्भमें तथा बीच-बीचमें आचमनकी विधि बतायी गयी है। इससे आन्तरिक पवित्रता होती है। लौकिक दृष्टिसे मन्त्रोच्चारजन्य कण्ठ-शुष्कता आदिके निवारणके लिये यह किया जाता है। आचमन आदिके अनन्तर भगवान् सूर्यको जलके द्वारा अर्घ प्रदान किया जाता है। ये जलकी बूँदें वज्र बनकर असुरोंका विनाश करती हैं।* इसके अनन्तर सूर्योपस्थानके मन्त्र हैं, जिनमें व्यक्ति स्वयंको स्वस्थ रखकर दीर्घायुष्य-प्राप्तिकी प्रार्थना करता है।

मन्त्रजप

सन्ध्योपासनकी पूर्ति गायत्रीमन्त्रके जपसे होती है। सूर्योपस्थानके बाद कम-से-कम एक माला गायत्रीमन्त्रका जप अवश्य करना चाहिये। कभी-कभी बहुत शीघ्रता होनेपर करमालासे १० बार गायत्री जपनेसे भी सन्ध्याकी पूर्ति हो जाती है। गायत्रीमन्त्रके जपकी बड़ी महिमा है। सम्पूर्ण वेदका सारस्वरूप गायत्रीमन्त्रमें समाहित है। भगवती गायत्रीको वेदमाता कहा गया है तथा उपासनाकी दृष्टिसे गायत्रीमन्त्रका जप अधिकाधिक करना चाहिये। समय हो तो सन्ध्योपासनके उपरान्त गायत्रीमन्त्रकी ११ मालाका प्रतिदिन जप किया जा सकता है। इससे पापका क्षय होता है तथा प्रत्यवाय समाप्त होते हैं। मन्त्रोंमें गायत्रीमन्त्र सर्वोपरि माना गया है, परंतु इसके जपनेका अधिकार केवल यज्ञोपवीतधारी व्यक्तिको ही है।

नामजप

नामजपकी बड़ी महिमा है। विशेषकर कलियुगमें अपने कल्याणका आधार ही नामजप है। अपने इष्टदेवके नामका निरन्तर जप करते रहना चाहिये। नामजप करनेमें किसी प्रकारका बन्धन नहीं है। चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते—सब समय भगवन्नामका जप किया जा सकता है। भगवान्‌को निरन्तर स्मरण रखनेका यह अमोघ साधन है। मालाका प्रयोग करनेसे, जपके संख्याकी गिनती रखनेसे नामजप बराबर चलता रहता है।

पंचमहायज्ञ

सृष्टिके कार्यका सुव्यवस्थितरूपसे संचालन और सब जीवोंका यथायोग्य भरण-पोषण पाँच श्रेणियोंके जीवोंकी पारस्परिक सहायतासे सम्पन्न होता है। वे पाँच हैं—देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि भूतप्राणी। देवता संसारभरमें सबको इष्ट भोग देते हैं, ऋषि-मुनि सबको ज्ञान देते हैं, पितर सन्तानका भरण-पोषण करते हैं, रक्षा करते हैं और कल्याण-कामना करते हैं, मनुष्य कर्मोंके द्वारा सबका हित करते हैं और पशु-पक्षी, वृक्षादि सब जीवोंके सुखके लिये अपना आत्मदान देते रहते हैं। इन पाँचोंके सहयोगसे ही सबका निर्विघ्न जीवननिर्वाह होता है, अतः प्रत्येक व्यक्तिपर इन पाँचोंके ऋण हैं—देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण, मनुष्य-ऋण और भूत-ऋण। पंच-महायज्ञसे इन पाँचों प्रकारके ऋणसे मुक्ति होती है। अतः प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन निम्नलिखितरूपसे पंचमहायज्ञ सम्पन्न

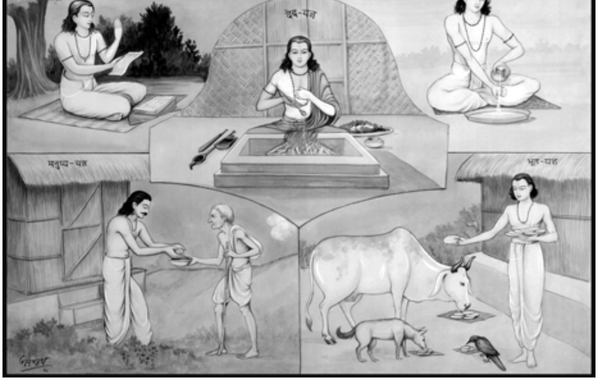

* सन्ध्यायां यदपः प्रयुङ्क्ते ता विप्रुषो। वज्री भूत्वा असुरानपाघ्नन्ति॥

करना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह जो कुछ भी अर्जित करता है, उसमें इन सबका भाग सबको देकर ही अपने उपयोगमें लाये।

जो मनुष्य सब जीवोंको उनका उचित हिस्सा देकर बचा हुआ खाता है, अपने उपयोगमें लाता है, वही अमृताशी (अमृत खानेवाला) है। जो ऐसा न करके केवल अपने लिये कमाता है और अकेला ही खाता है, वह पाप खाता है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३।१३)

यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपना शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।

पंचमहायज्ञके अनुष्ठानसे समस्त प्राणियोंकी तृप्ति होती है, पंचमहायज्ञ करनेसे अन्नादिकी शुद्धि तथा पापोंका क्षय होता है। अतः पंचमहायज्ञ करके ही गृहस्थोंको भोजन करना चाहिये। इसके सम्पन्न करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

पंचमहायज्ञका स्वरूप

१-ब्रह्मयज्ञ—वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि इतिहास-ग्रन्थोंके अध्ययन, अध्यापन तथा स्वाध्यायको ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है। ब्रह्मयज्ञ करनेसे ज्ञानकी वृद्धि होती है, इसके सम्पन्न करनेसे व्यक्ति ऋषि-ऋणसे मुक्त हो जाता है।

२-देवयज्ञ—अपने इष्टदेवकी उपासना तथा परब्रह्म परमात्माके निमित्त अग्निमें किये गये हवनको देवयज्ञ कहते हैं। देव-ऋणसे उऋण होनेके लिये देवयज्ञ करना परमावश्यक है।

३-भूतयज्ञ—कृमि, कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदिकी सेवाको भूतयज्ञ कहते हैं। सामान्यतः प्रत्येक प्राणी अपने सुखके लिये अनेक भूतों—जीवोंको प्रतिदिन क्लेश देता है; क्योंकि ऐसा हुए बिना शरीरयात्रा नहीं चल पाती। अतः भूतों—जीवोंसे उऋण होनेके लिये भूतयज्ञ करना आवश्यक है। भूतयज्ञसे कृमि-कीट, पशु-पक्षी आदिकी तृप्ति होती है।

४-पितृयज्ञ—पितरोंके निमित्त तर्पण तथा श्राद्ध आदि करना पितृयज्ञ है। पितृयज्ञके रूपमें कम-से-कम पितृतर्पण प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये। इससे समस्त लोकोंकी तथा पितरोंकी तृप्ति होती है। इससे लोकमें यश, धन तथा सन्तान-प्राप्तिका सुख प्राप्त होता है।

तर्पणका फल—एक-एक पितरको तिलमिश्रित जलकी तीन-तीन अंजलियाँ प्रदान करे। (इस प्रकार तर्पण करनेसे) जन्मसे आरम्भकर तर्पणके दिनतक किये पाप उसी समय नष्ट हो जाते हैं।*

तर्पण न करनेसे प्रत्यवाय (पाप)—ब्रह्मादिदेव एवं पितृगण तर्पण न करनेवाले मानवके शरीरका रक्तपान करते हैं अर्थात् तर्पण न करनेके पापसे शरीरका रक्तशोषण होता है—

'अतर्पिताः शरीराद्रुधिरं पिबन्ति'

—इससे यह सिद्ध होता है कि गृहस्थ मानवको प्रतिदिन तर्पण अवश्य करना चाहिये।

५-मनुष्ययज्ञ—क्षुधासे अत्यन्त पीड़ित मनुष्यके घर आ जानेपर उसकी भोजनादिसे की जानेवाली सेवाको मनुष्ययज्ञ कहते हैं। अतिथिके घर आ जानेपर चाहे वह किसी जाति या सम्प्रदायका हो, उसकी सम्मानपूर्वक मधुर वचन, जल तथा अन्न आदिसे यथाशक्ति सेवा करनी चाहिये। मनुष्ययज्ञसे धन, आयु, यश और स्वर्ग आदिकी प्राप्ति होती है।

भगवद्दर्शन तथा चरणामृतपान

इसके बाद अपने इष्टदेवकी पूजा-उपासनाका प्रकरण आता है, जो लोग स्वयं उस समय भगवान्‌की पूजामें संलग्न होना चाहते हों, उनके लिये नीचे देवोपासनाकी विधि लिखी जा रही है। जिनके पास समयका अभाव हो, वे कम-से-कम भगवान्‌के मन्दिरमें जहाँ विधिपूर्वक पूजा होती हो, वहाँ जाकर स्तुति और प्रार्थनाके द्वारा परमात्मप्रभुके समक्ष अपनी श्रद्धा निवेदित करें तथा उन्हें प्रभुका चरणामृत ग्रहण करना चाहिये। चरणामृतकी बड़ी महिमा है। विशेषकर शालग्रामभगवान्‌का चरणामृत भौतिक दृष्टिसे त्रिदोषनाशक होता है, कारण शालग्रामशिलामें स्वर्णकी मात्रा रहती है। चरणामृतमें तुलसीदलका भी मिश्रण रहता

* एकैकस्य तिलैर्मिश्रांस्त्रींस्त्रीन् दद्याज्जलाञ्जलीन्। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ (नित्यकर्मपूजाप्रकाश)

है, जो स्वयंमें एक औषधि है। आयुर्वेदमें औषधियोंके साथ अनेक रोगोंमें तुलसीका अनुपानरूपसे विधान किया गया है। इस प्रकार चरणामृत अनेक रोगोंका नाशक तथा जीवनीशक्तिवर्धक गुणोंसे युक्त है। इस कारण इसे **अकालमृत्युहरणम्, सर्वव्याधिविनाशनम्** कहना उचित ही है।

देवोपासना

जीवनमें उपासनाका विशेष महत्त्व है। जब मनुष्य अपने जीवनका वास्तविक लक्ष्य निर्धारित कर लेता है, तब वह तन-मन-धनसे अपने उस लक्ष्यकी प्राप्तिमें संलग्न हो जाता है। मानवका वास्तविक लक्ष्य है भगवत्प्राप्ति। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये उसे यथासाध्य संसारकी विषय-वासनाओं और भोगोंसे दूर रहकर भगवदाराधन एवं अभीष्टदेवकी उपासनामें संलग्न होनेकी आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार गंगाका अविच्छिन्न प्रवाह समुद्रोन्मुखी होता है, उसी प्रकार भगवद्गुण-श्रवणके द्वारा द्रवीभूत निर्मल, निष्कलंक, परम पवित्र अन्त:करणका भगवदुन्मुख हो जाना वास्तविक उपासना है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥

(श्रीमद्भा० ३। २९। ११)

इसके लिये आवश्यक है कि चित्त संसार और तद्विषयक राग-द्वेषादिसे विमुक्त हो जाय। शास्त्रों और पुराणोंकी उक्ति है—**'देवो भूत्वा यजेद् देवान् नादेवो देवमर्चयेत्।'** देव-पूजाका अधिकारी वही है, जिसमें देवत्व हो। जिसमें देवत्व नहीं, वास्तवमें उसे देवार्चनसे पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती। अत: उपासकको भगवदुपासनाके लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष, अभिमान आदि दुर्गुणोंका त्यागकर अपनी आन्तरिक शुद्धि करनी चाहिये। साथ ही शास्त्रोक्त आचार-धर्मको स्वीकारकर बाह्य शुद्धि कर लेनी चाहिये, जिससे उपासकके देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार तथा अन्तरात्माकी भौतिकता एवं लौकिकताका समूल उन्मूलन हो सके और उनमें रसात्मकता तथा पूर्ण दिव्यताका आविर्भाव हो जाय। ऐसा जब हो सकेगा, तभी वह उपासनाके द्वारा निखिल-रसामृतमूर्ति सच्चिदानन्दघन भगवत्स्वरूपकी अनुभूति प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेगा।

यहाँ शास्त्रोंमें वर्णित देवोपासनाकी कुछ विधियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

नित्योपासनामें दो प्रकारकी पूजा बतायी गयी है—१-मानसपूजा और २-बाह्यपूजा। साधकको दोनों प्रकारकी पूजा करनी चाहिये, तभी पूजाकी पूर्णता है। अपनी सामर्थ्य और शक्तिके अनुसार बाह्यपूजाके उपकरण अपने आराध्यके प्रति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निवेदन करना चाहिये। शास्त्रोंमें लिखा है कि **'वित्तशाठ्यं न समाचरेत्'** अर्थात् देव-पूजनादि कार्योंमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये। सामान्यत: जो वस्तु हम अपने उपयोगमें लेते हैं, उससे हल्की वस्तु अपने आराध्यको अर्पण करना उचित नहीं है। वास्तवमें भगवान्‌को वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, वे तो भावके भूखे हैं। वे उपचारोंको तभी स्वीकार करते हैं, जब निष्कपटभावसे व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा और भक्तिसे निवेदन करता है।

बाह्यपूजाके विविध विधान हैं, यथा—राजोपचार, सहस्रोपचार, चतु:षष्ट्युपचार, षोडशोपचार और पंचोपचार-पूजन आदि। यद्यपि सम्प्रदाय-भेदसे पूजनादिमें किंचित् भेद भी हो जाते हैं, परंतु सामान्यत: सभी देवोंके पूजनकी विधि समान है। गृहस्थ प्राय: स्मार्त होते हैं, जो पंचदेवोंकी पूजा करते हैं। पंचदेवोंमें १-गणेश, २-दुर्गा, ३-शिव, ४-विष्णु और ५-सूर्य हैं। ये पाँचों देव स्वयंमें पूर्ण ब्रह्मस्वरूप हैं। साधक इन पंचदेवोंमें एकको अपना इष्ट मान लेता है, जिन्हें वह सिंहासनपर मध्यमें स्थापित करता है। फिर यथालब्धोपचार-विधिसे उनका पूजन करता है।

भगवत्पूजा अतीव सरल है, जिसमें उपचारोंका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। महत्त्व भावनाका है। उस समय जो भी उपचार उपलब्ध हो जायँ, उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निश्छल दैन्यभावसे भगवदर्पण कर दिया जाय तो उस पूजाको भगवान् अवश्य स्वीकार करते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन:॥

(गीता ९। २६)

अर्थात् जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्प

आदि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

विशिष्ट उपासना

विशेष अवसरोंपर जो देवाराधन किया जाता है, जैसे—नवरात्रके अवसरपर दुर्गापूजा, सप्तशतीका पाठ, रामायण आदिके नवाह-पाठ, श्रावण आदि पवित्र महीनोंमें लक्ष-पार्थिवार्चन, महारुद्राभिषेक, श्रीमद्भागवतसप्ताह आदि विशेष प्रकारके अनुष्ठान विशिष्ट उपासनाएँ हैं। आरोग्यता एवं दीर्घजीवन-प्राप्तिके निमित्त महामृत्युंजयका जप एवं धन, सन्तान तथा अन्य कामनाओंके निमित्त किये जानेवाले अनुष्ठान भी इन्हींमें आते हैं, परंतु भगवत्प्रीतिके निमित्त किये गये अनुष्ठानका अनन्त फल शास्त्रोंमें बताया गया है, जो भी अनुष्ठान-साधन-भजन किया जाय, वह अनात्म (संसारकी) वस्तुओंकी प्राप्तिके निमित्त नहीं, अपितु भगवान्की प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये ही करना चाहिये।

मानस-पूजा

बाह्यपूजाके साथ-साथ मानसपूजाका भी अत्यधिक महत्त्व है। पूजाकी पूर्णता मानसपूजनमें ही हो जाती है। भगवान्को किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वे तो भावके भूखे हैं। संसारमें ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे परमेश्वरकी पूजा की जा सके। इसलिये शास्त्रोंमें मानस-पूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। मानस-पूजामें भक्त अपने इष्टदेवकी मानसिक मूर्तिकी कल्पना अपने हृदयमें करता है तथा उन्हें मुक्तामणियोंसे मण्डितकर स्वर्णसिंहासनपर विराजमान करता है। स्वर्गलोककी मन्दाकिनी गंगाके जलसे अपने आराध्यको स्नान कराता है, कामधेनु गौके दुग्धसे पंचामृतका निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य अलौकिक होते हैं। पृथ्वीरूपी गन्धका अनुलेपन करता है। अपने आराध्यके लिये कुबेरकी पुष्पवाटिकासे स्वर्णकमल-पुष्पोंका चयन करता है। भावनासे वायुरूपी धूप, अग्निरूपी दीपक तथा अमृतरूपी नैवेद्य भगवान्को अर्पण करनेकी विधि है। इसके साथ ही त्रिलोककी सम्पूर्ण वस्तु, सभी उपचार सच्चिदानन्दघन परमात्मप्रभुके चरणोंमें भावनासे भक्त अर्पण करता है। यह है मानस-पूजाका स्वरूप। इसकी एक संक्षिप्त विधि भी पुराणोंमें वर्णित है, जो नीचे लिखी जा रही है—

१-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि।

(प्रभो! मैं पृथिवीरूप गन्ध (चन्दन) आपको अर्पित करता हूँ।)

२-ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि।

(प्रभो! मैं आकाशरूप पुष्प आपको अर्पित करता हूँ।)

३-ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि।

(प्रभो! मैं वायुदेवके रूपमें धूप आपको अर्पित करता हूँ।)

४-ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि।

(प्रभो! मैं अग्निदेवके रूपमें दीपक आपको अर्पित करता हूँ।)

५-ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि।

(प्रभो! मैं अमृतके समान नैवेद्य आपको निवेदित करता हूँ।)

६-ॐ सौं सर्वात्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि।

(प्रभो! मैं सर्वात्माके रूपमें संसारके सभी उपचारोंको आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ।)—इन मन्त्रोंसे भावनापूर्वक मानस-पूजा की जा सकती है।

भोजन-विज्ञान

भोजन तैयार हो जानेपर सर्वप्रथम बलिवैश्वदेव एवं पंचबलि करना चाहिये तथा भगवान्का भोग लगाना चाहिये। पंचबलिका तात्पर्य है, भोजनमें जो सामग्री बनती है, वे सभी वस्तुएँ पाँच जगह निकाली जायँ। पहली बलि गोमाताके लिये, दूसरी श्वान (कुत्ते)-के लिये, तीसरी वायस (कौए)-के लिये, चौथी बलि देवोंके लिये और पाँचवीं पिपीलिका (चींटी आदि कीट-पतंगों)-के लिये संकल्पद्वारा प्रदान करनेकी विधि है। भगवान्के भोगमें तुलसीदल छोड़नेका विधान है। तुलसीदलका विशेष महत्त्व बताया गया है। इसका वैज्ञानिक रहस्य यह है कि भोजनमें तुलसीदल डालनेसे न्यूनातिन्यून परिमाणमें विद्यमान अन्नकी विषाक्तता तुलसीके प्रभावसे शमित हो जाती है—'**तुलसीदलसम्पर्कादन्नं भवति निर्विषम्।**' अतः जब भी भोजन करे तो पहले भगवान्को निवेदन करके प्रसादरूपसे ही ग्रहण करे। पैरोंको धोकर, भलीभाँति

कुल्ला करके, हाथ-मुँह धोकर भोजन करना चाहिये। भोजन करनेसे पूर्व घरपर आये अतिथिका सत्कार करे। फिर अपने घरमें आयी विवाहिता कन्या, गर्भिणी स्त्री, दु:खिया, वृद्ध और बालकोंको भोजन कराकर अन्तमें स्वयं भोजन करना चाहिये। इन सबको भोजन कराये बिना जो स्वयं भोजन करता है, वह पापमय भोजन करता है।

जिस प्रकार सन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि प्रात:-सायं दो बार करनेकी विधि है, उसी प्रकार अन्नका भोजन भी गृहस्थको प्रात:-सायं दो बार ही करना चाहिये। इसके अतिरिक्त दूध-फलादिका सेवन करना उचित है। भोजनसे पूर्व भोजनपात्रका परिषेचन (चारों ओर जलका मण्डल) करना चाहिये, जिससे कीट आदि भोजनकी थालीसे दूर रहें।* भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व लवणरहित तीन ग्रास '**ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा, ॐ भूतानां पतये स्वाहा**'—इन तीन मन्त्रोंसे थालीसे बाहर दायीं ओर निकालकर रखना चाहिये तथा इन्हीं मन्त्रोंसे जल भी छोड़ना चाहिये। इन तीन ग्रासोंमें पृथ्वी, भुवनमण्डल तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको तृप्त करनेकी भावना है। तदनन्तर भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व लवणरहित पाँच छोटे-छोटे ग्रासोंको—'**ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा**'—इन पाँच मन्त्रोंसे मुँहमें लेना चाहिये। इन पाँच ग्रासोंके द्वारा आत्मस्वरूप ब्रह्मके प्रीत्यर्थ जठराग्निमें आहुति प्रदान करनेका भाव है। भोजनके पूर्व '**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा**' इस मन्त्रसे आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने भोजनको अमृतरूपी बिछावन (आधार) प्रदान करता हूँ। इसके बाद मौन होकर प्रसन्न मनसे खूब चबा-चबाकर भोजन करे। आयुर्वेदके अनुसार एक ग्रासको लगभग बत्तीस बार चबाना चाहिये। जो अन्नको चबाकर नहीं खाता, उसके दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा दाँतोंके बदले उसकी अँतड़ियोंको काम करना पड़ता है, जिससे अग्नि मन्द हो जाती है। कहा गया है कि अन्नके दो भाग, जल और वायुके एक-एक भागद्वारा उदरकी पूर्ति करनी चाहिये। भोजन करते समय जल न पीना स्वास्थ्यके लिये लाभदायक है। जल पीना हो तो भोजनके मध्यमें थोड़ा-थोड़ा आवश्यकतानुसार पीना चाहिये। भोजनके अन्तमें जल पीना उचित नहीं है। भोजनके कम-से-कम एक घण्टे बाद इच्छानुसार जल पीना चाहिये। भोजनके अन्तमें '**ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा**' मन्त्र बोलकर आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने भोजनप्रसादको अमृतसे आच्छादित करता हूँ।

अप्रसन्न मनसे, बिना रुचिके, भूखसे अधिक और अधिक मसालोंवाला चटपटा भोजन शरीरके लिये हानिकारक होता है। भोजन न तो इतना कम होना चाहिये, जिससे शरीरकी शक्ति घट जाय और न इतना अधिक होना चाहिये कि जिसे पेट पचा ही न सके।

बहुत प्यास लगी हो, पेटमें दर्द हो, शौचकी हाजत हो अथवा बीमार हो— ऐसे समय भोजन न करे। अपवित्र स्थानमें, सन्ध्याकालमें, गन्दी जगह, फूटी थाली आदिमें भोजन न करे। भोजन बनाने और परोसनेवाला मनुष्य दुराचारी, व्यभिचारी, चुगलखोर, छूतका रोगी, कोढ़ और खाज-खुजलीका रोगी, क्रोधी, वैरी और शोकसे ग्रस्त नहीं होना चाहिये। जिस आसनपर भोजन करने बैठे, उसे पहले झाड़ लेना चाहिये और सुखासनसे बैठकर भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय गुस्सा न हो, कटु वचन न कहे। भोजनमें दोष न बतलाये, रोये नहीं, शोक न करे, जोरसे न बोले। किसी दूसरेको न छुए, वाणीका संयम करके अनिषिद्ध अन्नका भोजन करे। अन्नकी निन्दा न करे। बहुत गरम तथा बहुत ठण्डी चीज दाँतोंसे चबाकर न खाये। अधिक तीखा, अधिक कड़वा, अधिक नमकीन, अधिक गरम, अधिक रूखा, अधिक तेज भोजन राजसी है और अधकच्चा, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी और जूठा अन्न तामसी है। राजसी, तामसी अन्नका, मांस-मद्यका तथा शास्त्रनिषिद्ध अन्नका त्याग करना चाहिये। भोजनके आदिमें अदरकको कतरकर उसके साथ थोड़ा नमक मिलाकर खाना अच्छा है। जीभके स्वादवश अधिक खा

---

* सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम्। नान्तराभोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधि:॥
भोजनादौ सदा विप्रैर्विधेयं परिषेचनम्। तेन कीटादय: सर्वे दूरं यान्ति न संशय:॥

लेना उचित नहीं है।

एक थालीमें दो आदमी न खायँ। इसी प्रकार एक

कटोरे या गिलासमें दूध या पानी न पियें। सोये हुए न खायें। दूसरेके हाथसे न खायँ। दूसरेके आसनपर अथवा गोदमें लेकर अन्न न खायें।

ताँबेके बरतनमें दूध न रखें। जिस दूधमें नमक गिर गया हो, उसे कभी न पियें। पीतलके बरतनमें खट्टी चीज रखकर न खायँ। एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या आदि दिनोंको व्रत रखना चाहिये। व्रतके दिन निराहार रहे या परिमित आहार करे, केवल जल पीना अच्छा है।

रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ, पक्षीका खाया हुआ, कुत्तेका छुआ हुआ, गायका सूँघा हुआ, कीड़ा, लार, थूक आदि पड़ा हुआ, अपमानसे मिला हुआ तथा वेश्या, कलाल, कृतघ्नी, कसाई और राजाका अन्न नहीं खाना चाहिये।

भोजनमें चौकेकी व्यवस्था

धूल और दुर्गन्धिरहित, प्रकाशयुक्त, शुद्ध हवादार स्थानमें भोजन बनाना चाहिये। चारों ओरसे घिरी हुई जगहमें बैठकर भोजन करना चाहिये। प्राचीन कालसे ही अपने यहाँ चौकेकी व्यवस्थापर बहुत ध्यान दिया जाता रहा है। चौकेके भीतर जो वैज्ञानिकता है, उसे आजकल लोग भूलते जा रहे हैं। चौका चार प्रकारकी शुद्धियोंका समुच्चय है और भोजनमें इन चारों प्रकारकी शुद्धियोंकी आवश्यकता है। इससे किया गया भोजन हमारे शरीरको स्वस्थ तथा मनको पवित्र बनाता है। ये चार शुद्धियाँ हैं—(१) क्षेत्रशुद्धि, (२) द्रव्यशुद्धि, (३) कालशुद्धि और (४) भावशुद्धि।

(१) क्षेत्रशुद्धि—भोजन करते समय हमें क्षेत्र या स्थानकी शुद्धिपर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है; क्योंकि प्रत्येक स्थानका वायुमण्डल, वातावरण, पर्यावरण हमारे मन तथा तनको जब प्रभावित करता है तो हमारे भोजनको भी प्रभावित करेगा ही। यदि किसी व्यक्तिको मरघट या श्मशानभूमि अर्थात् किसी अपवित्र स्थानमें भोजन कराया जाय और उसी व्यक्तिको उपवन आदि किसी पवित्र स्थानपर भोजन कराया जाय तो इन दोनों स्थानोंके भोजन, पाचनमें पर्याप्त अन्तरका अनुभव होगा। इसी प्रकार बाजारोंमें, गलियों आदिके आस-पास, कूड़ा-कचरा और उनपर भिनभिनाती मक्खियाँ, मच्छर तथा खाद्यपदार्थोंपर जहाँ धूल जमी हो, ऐसे दूषित स्थानोंपर जब व्यक्ति चाट, पकौड़ी, मिष्टान्न आदि खाता-पीता है तो कदाचित् वह भूल जाता है कि ऐसे स्थानोंका पर्यावरण पर्याप्त दूषित है। ऐसे वातावरणमें बैक्टीरिया, कीटाणु भोजनके साथ शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं, जो शरीरमें रुग्णता पैदा करते हैं। चौकेकी व्यवस्थाके अन्तर्गत यह क्षेत्रशुद्धि स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त वैज्ञानिक और लाभदायक है। प्राचीन परम्पराके अनुसार चौकेमें अनधिकृत व्यक्तिका प्रवेश निषिद्ध रहता था। केवल अधिकृत व्यक्ति ही भोजन छूनेके अधिकारी होते थे।

(२) द्रव्यशुद्धि—द्रव्य भी हमारे भोजनपर बड़ा असर डालता है। अनीति, अनाचार और बेईमानी आदि अधर्मके साधनोंके धनसे बनाया गया भोजन हमारे तन तथा मनको प्रभावित करता है। ऐसा भोजन हमारे परमाणुओंको सात्त्विक कभी भी नहीं बना सकता।

(३) कालशुद्धि—काल या समयका भी भोजनपर प्रभाव पड़ता है। जो लोग समयपर भोजन नहीं करते, वे प्रायः उदरसम्बन्धी व्याधियोंसे पीड़ित रहते हैं। भूख लगनेपर भोजन करना भोजनका सर्वोत्तम समय है तथा नियमित समयसे भोजन करना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है। गृहस्थके लिये सूर्य रहते दिनमें भोजन करना चाहिये तथा दूसरे समयका भोजन सूर्यास्तके बाद करनेकी विधि है। मानवको हितकर भोजन उचित मात्रामें उचित समयपर

करना चाहिये—'**हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः**'। (चरक)

(४) भावशुद्धि—भोजनपर भावनाओंका भी गहरा प्रभाव पड़ता है, इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको नीरोग रहनेके लिये भोजन शुद्धभावसे करना चाहिये। क्रोध, ईर्ष्या, उत्तेजना, चिन्ता, मानसिक तनाव, भय आदिकी स्थितिमें किया गया भोजन शरीरके अन्दर दूषित रसायन पैदा करता है, जिसके फलस्वरूप शरीर विभिन्न रोगोंसे घिर जाता है। शुद्ध चित्तसे प्रसन्नतापूर्वक किया गया आहार शरीरको पुष्ट करता है, कुत्सित विचारों एवं भावोंके साथ किये गये भोजनसे व्यक्ति कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। इसके साथ ही भोजन बनानेवाले व्यक्तिके भी भाव शुद्ध होने चाहिये। उसे भी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदिसे ग्रस्त नहीं होना चाहिये।

इस प्रकार इन चारों शुद्धियोंके साथ यदि भोजन करेंगे तो निश्चितरूपसे हमारा मन भी निर्मल रहेगा और शरीर भी नीरोगी रहेगा।

भोजनसामग्रीकी शुद्धता

भोजनसामग्रीकी शुद्धता और पवित्रतापर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। भोजनके कच्चे सामान आटा, दाल, घी, मसाला आदि स्वच्छ और साफ बरतनोंमें ढककर रखे जायँ। बिना ढके बरतनोंमें चूहे घुस जाते हैं और वे वहाँ मल-मूत्रका त्याग कर देते हैं। चूहोंके मल-मूत्रमें भयानक विष होता है। खुले बरतनोंमें दूसरे जानवर भी घुसकर सामानको गन्दा कर देते हैं। चौकेमें भोजन बनाकर जिन बरतनोंमें रखा हो, उन्हें ढककर रखना चाहिये। दूध, दही, मिठाई आदि पदार्थ ऐसे स्थानोंपर रखने चाहिये, जिनसे उनपर मक्खी-मच्छर न बैठ पायें। पंगतमें भोजन करने बैठे तो सबके साथ उठना चाहिये।

भोजनके बादके कृत्य

भोजन करनेके अनन्तर दाँतोंको खूब अच्छी तरह साफ करना चाहिये, ताकि उनमें अन्नका एक भी कण न रह जाय। अन्नकण दाँतोंमें रह जानेपर दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा उससे पायरियाका रोग भी हो जाता है। दाँतोंके बीचमें यदि फाँक हो गयी हो तो उसमें फँसे अन्नकणोंको नीम आदिके तिनकेसे निकालकर अच्छी तरह धो लेना चाहिये। अपने शास्त्रोंमें भोजनके अनन्तर सोलह कुल्ले करनेका विधान है। कुल्ला करते समय मुँहमें पानी रखकर दस-पन्द्रह बार आँखोंको जलके छींटे देकर धोना चाहिये। दिनमें जितनी बार मुँहमें पानी ले उतनी बार यदि यह क्रिया की जाय तो आँखोंमें बड़ा लाभ होता है। भोजनके उपरान्त लघुशंका भी तुरंत करनी चाहिये। यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है, इससे मूत्रसम्बन्धी बीमारीका बचाव होता है।

भोजनके बाद दौड़ना, कसरत करना, तैरना, नहाना, घुड़सवारी करना, मैथुन करना और तुरंत ही बैठकर काम करने लगना स्वास्थ्यके लिये बहुत हानिकर है।

भोजनके बाद लगभग सौ कदम चलना चाहिये तथा चलनेके बाद लगभग १० मिनट दोनों घुटने पीछे मोड़कर वज्रासनमें बैठना चाहिये, तदनन्तर विश्रामकी मुद्रामें सीधे लेटकर ८ श्वास तथा दाहिनी करवटमें १६ श्वास और बायीं करवट लेटकर ३२ श्वास लेनेकी विधि है। इससे पाचनक्रिया ठीक रहती है तथा यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त लाभप्रद है।

जीविकोपार्जन—जिन व्यक्तियोंपर जीविकोपार्जनकी जिम्मेदारी है, उन्हें कम-से-कम ८ घण्टे अथवा आवश्यकतानुसार इससे अधिक समयमें जीविकोपार्जनके लिये व्यापार अथवा नौकरी (सेवा) न्यायोचित रूपमें पूर्ण ईमानदारीके साथ तथा तत्परतापूर्वक कर्तव्यबुद्धिसे करना चाहिये। इसमें एक रहस्य है, इस रहस्यको समझ लेनेपर जीविकोपार्जनका कार्य भी भगवान्‌की पूजामें परिणत हो जाता है। लोभकी अत्यन्त बढ़ी हुई प्रवृत्ति तथा किसी भी तरह धन कमानेकी चेष्टा ही मनुष्यको पतनकी ओर ले जाती है। झूठ, कपट, चोरी और छल आदिसे बचकर यदि व्यक्ति आसक्तिरहित होकर पूर्ण ईमानदारी, सत्यता एवं तत्परतापूर्वक अपना व्यापार अथवा नौकरी कर्तव्यबुद्धिसे करे तो उसका यह कार्य भगवदाराधनके रूपमें परिणत हो जाता है तथा उसके प्रारब्धके अनुसार उसे धन और यशकी भी प्राप्ति होती ही है। साथ ही वह उत्तरोत्तर स्वाभाविक रूपसे उन्नतिके पथपर अग्रसर होता है। परमात्मप्रभु भी उसपर प्रसन्न रहते हैं।

शयन—रातमें भोजन करनेके तुरंत बाद सोना नहीं चाहिये। सोनेसे पूर्व सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय और भगवान्‌का स्मरण अवश्य करना चाहिये। सोनेके पूर्व लघुशंका

आदिसे निवृत्त होकर हाथ-पैर धोकर उन्हें भलीभाँति पोंछकर स्वच्छ बिछावनपर पूर्व या दक्षिणकी ओर सिर करके सोना चाहिये। हवादार घर जिसमें भगवान्‌के चित्र टँगे हों, शयनके लिये उत्तम स्थान माना गया है। भगवान्‌का ध्यान करके बायीं करवट सोना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है। सामान्यतः ६-७ घण्टे सोनेपर नींद पूरी हो जाती है। अभ्यास कर लेनेपर छः घण्टेसे कम भी सोया जा सकता है। सोनेके समय मुँह ढककर या मोजा पहनकर नहीं सोना चाहिये। रातमें जल्दी सोना तथा प्रातःकाल जल्दी उठना स्वास्थ्यके लिये विशेष लाभप्रद है। शयनका स्थान हवादार, स्वच्छ तथा साफ होना चाहिये।

मनुष्य सोकर उठनेपर शान्त अन्तःकरणसे जिसका चिन्तन करता है, उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार सोनेके पूर्व जिसका चिन्तन करता हुआ सोता है, उसका भी प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है कि उस विषयकी आवृत्ति अनेक बार निद्रा आ जानेतक हो जाती है, जिसका गुप्तरूपसे प्रवाह निद्रामें भी बना रहता है। इसीलिये सोनेसे पूर्व पुराणोंकी सात्त्विक कथा या भक्तगाथा श्रवण करके अथवा भगवन्नामका जप करते हुए सोनेका विधान किया गया है।

स्वास्थ्यरक्षाकी आवश्यक बातें

स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे शास्त्रोक्त दिनचर्या ऊपर प्रस्तुत की गयी है, वस्तुतः स्वास्थ्यरक्षाके पाँच मूल आधार हैं—(१) आहार, (२) श्रम, (३) विश्राम, (४) मानसिक सन्तुलन और (५) पंचमहाभूतोंका सेवन।

(१) आहार—आहारके सम्बन्धमें ऊपर विस्तारसे वर्णन किया जा चुका है। आयुर्वेदमें तीन प्रकारके भोजनोंका उल्लेख मिलता है—(१) शमन करनेवाला भोजन, (२) कुपित करनेवाला भोजन तथा (३) सन्तुलन रखनेवाला भोजन। वात-पित्त और कफ—इन तीनोंके असन्तुलनसे रोगका जन्म होता है। ये तीनों रोगके प्रमुख कारण हैं। जो भोज्यपदार्थ इन तीनोंका शमन करते हैं, वे शमनकारी और जो इन तीनोंको कुपित करते हैं, वे कुपितकारी तथा जो तीनोंको सन्तुलित किये रहते हैं, उन्हें सन्तुलनकारी भोजन कहा जाता है। इन तीनोंका स्वभावसे गहरा सम्बन्ध रहता है। इसलिये स्वभाव और परिस्थितिके अनुसार भोजन करनेकी अनुमति दी जाती है। शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और उसका प्रकार जो होगा, वह मानसिक श्रमशील व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और प्रकारसे भिन्न होगा।

आहारका सर्वोपरि सिद्धान्त तो यह है कि भूख लगनेपर आवश्यकतानुसार भूखसे कम मात्रामें भोजन करना चाहिये।

(२) श्रम—जीवनमें भोजनके साथ श्रमका कम महत्त्व नहीं है। आजकल श्रमके अभावमें आलस्य और प्रमादके कारण विभिन्न प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति हो रही है। ऐसे बहुत लोग हैं, जिन्हें जीवनमें कभी भी सच्ची भूखकी अनुभूति नहीं होती।

स्वस्थ रहनेके लिये दैनिक जीवनक्रममें कुछ घण्टे ऐसे बिताने चाहिये, जिससे सहज श्रम हो जाय। जो लोग स्वाभाविक रूपसे शारीरिक श्रम नहीं कर सकते, उन्हें व्यायाम, योगासन और भ्रमणके द्वारा श्रमशील होना चाहिये।

आजकल सिनेमा, होटल तथा क्लबोंमें जानेके लिये और टी.वी. आदि देखनेके लिये तो सरलतासे समय मिलता है, किंतु व्यायामके लिये समयके अभावकी शिकायत बनी रहती है। जो व्यक्ति श्रम या व्यायाम नियमित रूपसे करते हैं, उन्हें सामान्यतः दवा लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, वे स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ रहते हैं।

(३) विश्राम—आहार तथा श्रमकी तरह विश्राम भी शरीरकी अनिवार्य आवश्यकता है। अत्यधिक परिश्रमसे थके व्यक्तिमें विश्रामके पश्चात् नवजीवनका संचार होता है। रातकी गहरी नींदसे शरीरमें पुनः नयी शक्ति तथा मनमें नयी उमंगका प्रादुर्भाव होता है। विश्रामके बाद श्रम और श्रमके बाद विश्राम—दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं।

प्रायः लोग शरीरको तो विश्राम देते हैं, किंतु मनको विश्राम नहीं देते। शरीर एक स्थानपर पड़ा रहता है, किंतु मन इधर-उधर भटकता रहता है। नींदके समय शरीर

शान्त रहता है, किंतु मन स्वप्नमें फँसा रहता है। ध्यान तथा भगवन्नाम-स्मरणसे मनको विश्राम मिल सकता है। इसी प्रकार जीवनमें संयम-नियमका पालन करनेसे मनको शान्त रखनेमें सहायता मिलती है। निद्रा भी विश्रामका सर्वोत्तम साधन है। शरीर तथा मन—दोनोंको विश्राम मिलनेपर ही पूर्ण विश्रामकी स्थिति बनती है।

(४) मानसिक सन्तुलन—मानसिक विश्रामके बाद शारीरिक क्रिया होती है। शरीर सदा मनका अनुगामी होता है। मनमें संकल्प उठता है, इसके बाद ही शरीरद्वारा क्रिया आरम्भ होती है। शुद्ध चित्तमें पवित्र संकल्प या विचार आते हैं और अशुद्ध चित्तमें बुरे संकल्प या विचार आते हैं। मन शरीररूपी यन्त्रका संचालक है। मन या चित्तको शुद्ध रखनेपर वही सही मार्गपर चलेगा। इसलिये शरीरशुद्धिकी अपेक्षा चित्तशुद्धिका महत्त्व अधिक है। चित्तशुद्धिके बाद शारीरिक स्वास्थ्यका सुधार स्वत: स्वाभाविक रूपसे हो जायगा।

मनके शान्त तथा प्रसन्न रहनेपर सामान्यत: शरीर स्वस्थ रहेगा ही। मनमें अशान्ति, क्रोध, ईर्ष्या, राग-द्वेष बढ़नेपर शरीरको रोगी बननेसे रोका नहीं जा सकता। आजकल अनेक लोगोंको क्रोध, चिन्ता, भय, दु:ख तथा मानसिक तनाव आदिके कारण रक्तचाप, मधुमेह तथा हृदय एवं मस्तिष्कसम्बन्धी बीमारियाँ होती रहती हैं।

चित्तको शान्त और प्रसन्न रखनेकी दृष्टिसे मानसिक आहारके रूपमें हमें अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि करनी होगी। कानसे अच्छी बातें सुनें, भजन सुनें, आँखके द्वारा भी महापुरुषोंकी जीवनी पढ़ें, सत्-दृश्यका अवलोकन करें, मनमें अच्छे विचारोंको स्थान दें तथा बुरे विचारोंको त्यागें। तभी चित्तशुद्धिकी प्रक्रिया प्रारम्भ होगी।

वास्तवमें मानसिक स्वस्थता ही आरोग्यताकी मुख्य पूँजी है। मन तथा शरीर दोनों शुद्ध एवं स्वस्थ रहनेपर ही पूर्णरूपसे आरोग्य सुरक्षित रह सकता है। मानसिक सन्तुलन बनाये रखनेके लिये भगवान्‌का भजन, प्रार्थना, अपने इष्टका ध्यान, सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय आदि मुख्य साधन हैं। स्वस्थ रहनेका अर्थ है अपने-आपमें स्थित होकर शान्त एवं प्रसन्न रहना। वास्तवमें शान्ति, प्रसन्नता अथवा जीवनका सम्पूर्ण रहस्य स्वमें स्थित आत्मतत्त्वमें विद्यमान रहना है, जो उस परम तत्त्वका ही अंश है।

(५) पंचमहाभूतोंका सेवन—यह शरीर पंचमहाभूत अर्थात् आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीसे निर्मित है। जीवनकी रक्षाके लिये इन पाँचों तत्त्वोंकी अनिवार्य आवश्यकता है।

[१] आकाश—जैसे हमारे बाहर सर्वत्र आकाश है, वैसे ही हमारे शरीरके भीतर भी आकाश है। इसीलिये शरीरके भीतर असंख्य जीवनकोष हैं, जो गतिमान् हैं। रक्तसंचार या वायुसंचारके लिये शरीरमें खाली जगह अर्थात् आकाशकी आवश्यकता अनिवार्य है।

[२] वायु—प्राय: जहाँ आकाश है, वहाँ वायु भी है। चूँकि आकाश सर्वत्र है, अत: वायु भी सर्वत्र है। वायुके बिना एक पल भी व्यक्ति रह नहीं सकता। जल और अन्नके बिना तो कुछ घण्टों या दिनोंतक प्राण बच सकते हैं, किंतु वायुके बिना प्राणी कुछ ही क्षणोंमें प्राण त्याग देता है। वायुका सेवन मनुष्य चौबीस घण्टे सतत करता है, इसलिये आकाश तथा वायुका समान महत्त्व है।

जटिल रोगमें जब औषधि असर नहीं करती तब रोगीको वायु-परिवर्तन कराकर स्वास्थ्यलाभ कराया जाता है। जहाँ दवा काम नहीं करती, वहाँ हवा काम कर जाती है—ऐसी कहावत प्रचलित है। प्रकृतिने जीवनकी रक्षाके लिये प्रचुर मात्रामें हवा प्रदान कर रखी है।

[३] तेज—तेजका पर्यायवाची शब्द अग्नि या ऊष्मा है। जबतक प्राणी जीवित है तबतक शरीरमें गरमी रहती है। मृत्यु होनेपर शरीर ठंडा हो जाता है। जीवनके साथ तेज या ऊष्माका तथा सूर्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्यकी गरमीसे प्रकृति प्राणिमात्रके लिये फल-फूल, कन्द-मूल आदि पकाती है। सूर्यकिरणोंमें जन्तुनाशक गुण भी है। विभिन्न रोगोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सा भी की जाती है। स्वास्थ्यलाभकी दृष्टिसे प्रात:काल तथा सायंकालमें जब किरणोंमें गरमी कम होती है तब सूर्यका सेवन खुले बदन करना हितकर है। अत: तेज भी जीवनके लिये अत्यन्त उपयोगी है।

[४] जल—मानवको जलकी प्रचुर आवश्यकता है। मनुष्यके आहारमें ठोस पदार्थ कम और तरल पदार्थ अधिक मात्रामें रहता है। स्नान, भोजन, स्वच्छता और

सफाई—सभी कार्य जलके बिना सम्भव नहीं हैं। पशुपालन, खेती-बारी आदि सभी कार्य जलपर ही निर्भर करते हैं। अतः जल भी जीवन है।

[५] पृथ्वी—पृथ्वीमाताकी गोदमें हम जन्मसे लेकर मृत्युतक निरन्तर रहते हैं। पृथ्वी अर्थात् मिट्टीमें आकाश, वायु, जल तथा सूर्यके सहयोगसे अन्न, फल, मूल, वनस्पति और ओषधियों आदिकी उत्पत्ति होती है और इसीसे सभी प्राणियोंका भरण-पोषण तथा रोगोंकी चिकित्सा होती है। मिट्टीके विभिन्न प्रयोगोंसे अनेक रोगोंकी चिकित्सा होती है। मिट्टीकी पट्टी प्रायः सभी रोगोंमें उपयोगी है।

यह शरीर पंचमहाभूतोंसे बना है, इसलिये प्रकृतिमें आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी-तत्त्वकी प्रचुरता है, जिससे प्राणी मुक्तभावसे उनका उपयोग करके नीरोग और स्वस्थ रह सके।

कल्याणकामी मनुष्यके लिये आयुर्वेदशास्त्रके अन्तमें कुछ उपदेश प्रदान किये गये हैं, जो यहाँ प्रस्तुत हैं—

मानवको सभी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। हितैषी मित्रोंको समझना तथा वंचक मित्रोंसे दूर रहना चाहिये। अभावग्रस्त, रुग्ण एवं दीनजनोंकी सहायता करनी चाहिये। क्षुद्रातिक्षुद्र चींटी आदि प्राणियोंको अपने समान समझना चाहिये। देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथिका सतत सत्कार करना चाहिये। याचकोंको विमुख नहीं जाने देना चाहिये और कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। अपकार करनेवालेका भी निरन्तर उपकार करनेकी ही भावना रखनी चाहिये। फलकी कामनासे निरपेक्ष रहकर सम्पत्ति और विपत्तिमें सदा समबुद्धि रखनी चाहिये।[1] उचित समयपर अति संक्षेपमें किसीसे भी हितकर बात कहनी चाहिये—'**काले हितं मितं ब्रूयात्।**' मनुष्यको करुणार्द्र, कोमल, सुशील तथा संशयरहित होना चाहिये तथा किसीपर अत्यन्त विश्वास भी नहीं करना चाहिये। किसीको अपना शत्रु मानना तथा किसीसे शत्रुता करना दोनों अच्छे नहीं हैं।[2] सदैव सबसे विनम्र व्यवहार करना चाहिये। व्यर्थमें हाथ-पैर हिलाना, लगातार सूर्यकी ओर देखना तथा सिरपर भार ढोना आदि कार्य न करे, अत्यन्त चमकीली वस्तुओंकी ओर देरतक नहीं देखना चाहिये, इससे अन्धत्व आनेका भय होता है। सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय सोना, भोजन तथा स्त्रीगमन आदि करना निषिद्ध है। हानिप्रद पेय नहीं पीना चाहिये। किसी भी कार्यमें अति नहीं करना चाहिये—'**अति सर्वत्र वर्जयेत्**'।

बुद्धिमान् व्यक्तिको दूसरोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव तथा सत्पात्रको दान देनेकी भावना रखनी चाहिये। हिंसा, चोरी, पिशुनता, कठोरता, झूठ, दुर्भावना, ईर्ष्या, द्वेष आदि पापोंसे तथा शरीर, मन और वाणीके द्वारा किसी भी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। अन्यथा व्याधिरूपमें उनका दण्ड भोगना पड़ता है।

संक्षेपमें निष्कर्ष यह है कि जीवनके उत्कर्षके लिये तथा अपने कल्याणके लिये आचारधर्म अर्थात् सदाचारका पालन ही मनुष्यका मुख्य धर्म है—'**आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः**' (विष्णुसहस्रनाम श्लोक १३७)। जिसका अनुशीलनकर व्यक्ति अनेकानेक आपदाओं, रोगों, अभिचारोंसे सुरक्षित रहकर पूर्ण आरोग्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सभीको प्राप्त करनेमें सक्षम हो जाता है।

जो व्यक्ति सदैव हितकर आहार-विहारका सेवन करता है, सोच-समझकर कार्य करता है, विषयोंमें आसक्त नहीं होता, जो दानशील, समत्व बुद्धिसे युक्त, सत्य-परायण, क्षमावान्, वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला है, वह नीरोग होता है—

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

(चरक)

मन, बुद्धि और चित्त जिसका स्थिर है, ऐसा प्रसन्नात्मा व्यक्ति ही स्वस्थ है—

'**प्रसन्नात्मेन्द्रियग्रामो स्थिरधीः स्वस्थमुच्यते।**'

ये सभी बातें अथवा विशेषताएँ आचारधर्मके पालनसे ही सम्भव हैं और यही स्वस्थ दैनिक चर्याका आधार है।

१-आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम् ॥
अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन् । विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्॥
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ। सम्पद्विपत्स्वेकमना हेतावीर्ष्येत्फले न तु॥ (अ०हृ०सू० २। २३—२५)

२-न कञ्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्॥ (अ०हृ०सू० २। २७)

जीवनचर्या

सामान्यतया मानवके लिये एक प्रश्न है कि जीवन कैसे बिताया जाय। वैसे तो जीवनयापनके लिये प्रकृतिके कुछ नियम हैं, जिनके अनुसार स्वाभाविक रूपमें संसारके सम्पूर्ण प्राणी अपना निर्वाह करते हैं। मनुष्य विचारप्रधान प्राणी है, पशुत्वसे ऊपर उठकर दिव्यत्वकी ओर जाता है, पशुकी अपेक्षा मनुष्यकी यही विशेषता है कि पशु तो अपनी आँखोंके सामने कोई मोहक वस्तु देखकर उसे पानेके लिये दौड़ पड़ता है और उसके प्रलोभनमें फँसकर पीछे होनेवाली ताड़नापर दृष्टि नहीं रखता, उसे तो केवल वर्तमान सुख चाहिये, परंतु मनुष्य किसी आकर्षक वस्तुको देखकर यह जानता है, विचार करता है और फिर यदि वह वस्तु अपने जीवनकी प्रगतिमें सहायक हुई तो उसे जहाँतक हुआ अपनी उन्नतिमें बाधक न हो, स्वीकार करता है और उसका उपयोग करता है। यद्यपि मनुष्यको क्षणिक उपभोग-सुखपर जो कि अत्यन्त तुच्छ है, मुग्ध नहीं होना चाहिये। कारण मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह अपने भविष्यकी अर्थात् जन्मान्तरकी भी चिन्ता करे, केवल मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंकी परिधिमें ही सीमित न रहकर अपने शाश्वत कल्याणके लिये प्रयत्नशील रहे। इसीलिये भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा—**उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु आत्मैव रिपुरात्मनः॥** यदि हम अपना पतन नहीं होने देना चाहते हैं तो हमें अपना उद्धार अपने-आप करना होगा। वस्तुतः हम ही अपने-आपके मित्र और शत्रु हैं। यदि हम अपने कल्याणप्राप्तिके पथपर अर्थात् शास्त्रोक्त कर्तव्योंका क्रियान्वयन करते हैं, हम अपने मित्र हैं और यदि हम उच्छृंखलतापूर्वक अपनी मनमानी करते हैं तो स्वाभाविक रूपसे हम स्वयंके शत्रु हो जाते हैं। कारण उच्छृंखल होकर अधर्मपूर्वक कार्य करनेवाले व्यक्तिका पतन निश्चित है। उसे अगले जन्मोंमें पशु-पक्षी, कीट-पतंग एवं तिर्यक् योनि प्राप्त होती है तथा नरक भी भोगना पड़ता है। अतः अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

जीवनचर्याके अन्तर्गत जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये, इसपर संक्षेपमें यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है—

संस्कार

अपने शास्त्रोंमें संस्कारोंकी आवश्यकता बतायी गयी है, जैसे खानसे सोना, हीरा आदि निकलनेपर उसमें चमक, प्रकाश तथा सौन्दर्यके लिये तपाकर, तराशकर मल हटाना एवं चिकना करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मनुष्यमें मानवीय शक्तिका आधान होनेके लिये उसे सुसंस्कृत होना आवश्यक है और उसे पूर्णतः विधिपूर्वक संस्कारसम्पन्न करना चाहिये। वास्तवमें विधिपूर्वक संस्कार-साधनसे दिव्य ज्ञान उत्पन्न होकर आत्माको परमात्माके रूपमें प्रतिष्ठित करना ही मुख्य संस्कार है, तभी मानवजीवन प्राप्त करनेकी सार्थकता भी है।

संस्कारोंसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, संस्कार मनुष्यको पाप और अज्ञानसे दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञानसे समन्वित करते हैं।

शास्त्रोंमें संस्कारपर बहुत विचार हुआ है तथा विविध संस्कारोंका उल्लेख है, परंतु उनमें मुख्य तथा आवश्यक षोडश संस्कार माने गये हैं। महर्षि व्यासजीद्वारा प्रतिपादित प्रमुख षोडश संस्कार इस प्रकार हैं[१]—

१-गर्भाधानसंस्कार—विधिपूर्वक संस्कारसे युक्त गर्भाधानसे अच्छी और सुयोग्य सन्तान उत्पन्न होती है। इस संस्कारसे वीर्यसम्बन्धी तथा गर्भसम्बन्धी पापका नाश होता है। दोषका मार्जन तथा क्षेत्रका संस्कार होता है। यही गर्भाधानसंस्कारका फल है।[२]

१-गर्भाधानं पुसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया:॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः। केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडशः स्मृताः। (व्यासस्मृति १। १३—१५)

२-निषेकाद् बैजिकं चैनो गार्भिकं चापमृज्यते। क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥ (स्मृतिसंग्रह)

२-पुंसवनसंस्कार—पुत्रकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें पुंसवनसंस्कारका विधान है। इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, इसलिये पुंसवनसंस्कार किया जाता है।

३-सीमन्तोन्नयनसंस्कार—गर्भके छठे या आठवें मासमें यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारका फल भी गर्भकी शुद्धि ही है। सामान्यतः गर्भमें चार मासमें बालकके अंग-प्रत्यंग, हृदय आदि प्रकट हो जाते हैं। गर्भमें चेतना आ जाती है। इस समय जो संस्कार डाले जाते हैं, उसका बालकपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः माता-पिताको चाहिये कि इन दिनों विशेष सावधानीके साथ शास्त्रसम्मत व्यवहार रखें तथा गर्भिणी स्त्रीको सत्संग तथा अच्छी पुस्तकोंका स्वाध्याय करना चाहिये।

४-जातकर्मसंस्कार—इस संस्कारसे गर्भस्रावजन्य सारा दोष नष्ट हो जाता है, बालकके जन्म होते ही यह संस्कार करनेका विधान है। नालच्छेदनसे पूर्व बालकको स्वर्णकी शलाका अथवा अनामिका अँगुलीसे मधु तथा घृत चटाया जाता है।

५-नामकरणसंस्कार—इस संस्कारका फल आयु तथा तेजकी वृद्धि तथा लौकिक व्यवहारकी सिद्धि बताया गया है।[1] जन्मसे १० रात्रिके बाद ११वें दिन कुलक्रमानुसार किसी भी दिन नामकरणसंस्कार करनेकी विधि है।

६-निष्क्रमणसंस्कार—इस संस्कारका फल विद्वानोंने आयुकी वृद्धि बताया है। यह संस्कार बालकके चौथे या छठे मासमें होता है।

७-अन्नप्राशन—इस संस्कारके द्वारा माताके गर्भमें मलिनभक्षणजन्य जो दोष बालकमें आ जाते हैं, उनका नाश हो जाता है। शुभ मुहूर्तमें देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् माता-पिता आदि सोने या चाँदीकी शलाका या चम्मचसे बालकको हविष्यान्न (खीर) आदि पवित्र और पुष्टिकारक अन्न मन्त्रके उच्चारणपूर्वक चटाते हैं।

८-चूडाकरणसंस्कार (वपनक्रिया)—इसका फल आयु तथा तेजकी वृद्धि करना है, इसे प्रायः तीसरे, चौथे या सातवें वर्ष अथवा कुलपरम्परानुसार करनेका विधान है। शुभ मुहूर्तमें कुशल नाईद्वारा बालकका मुण्डन कराया जाता है तथा मर्मस्थानकी सुरक्षाके लिये सिरके पिछले भागमें चोटी रखनेका विधान किया है।

९-कर्णवेध—पूर्ण पुरुषत्व एवं स्त्रीत्वकी प्राप्तिके लिये यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारको छः माससे लेकर १६वें मासतकमें अथवा तीन, पाँच आदि विषमवर्षमें अथवा कुलके आचारके अनुसार करना चाहिये।

१०-उपनयन—इस संस्कारसे द्विजत्वकी प्राप्ति होती है, शास्त्रोंमें तो यहाँतक कहा गया है कि इस संस्कारके द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यका द्वितीय जन्म होता है। विधिवत् यज्ञोपवीत धारण करना इस संस्कारका मुख्य अंग है। इस संस्कारके द्वारा अपने आत्यन्तिक कल्याणके लिये वेदाध्ययन तथा गायत्रीजप, श्रौतस्मार्त आदि कर्म करनेका अधिकार प्राप्त होता है।

११-वेदारम्भसंस्कार—उपनयनके बाद बालकको वेदाध्ययनका अधिकार प्राप्त हो जाता है, साथ ही विद्याध्ययनमें कोई विघ्न नहीं होने पाता। ज्योतिर्निबन्धमें कहा गया है—

विद्यया लुप्यते पापं विद्ययाऽऽयुः प्रवर्धते।
विद्यया सर्वसिद्धिः स्याद्विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

वेदविद्याके अध्ययनसे सारे पापोंका लोप होता है, आयुकी वृद्धि होती है, सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, यहाँतक कि उसके समक्ष साक्षात् अमृत-रस अशनपानके रूपमें उपलब्ध हो जाता है।

१३-समावर्तन (वेदस्नान)-संस्कार—समावर्तन विद्याध्ययनका अन्तिम संस्कार है। विद्याध्ययन पूर्ण हो जानेके अनन्तर स्नातक ब्रह्मचारी अपने पूज्य गुरुकी आज्ञा मानकर अपने घरमें समावर्तित होता है, लौटता है। इसीलिये इसे समावर्तनसंस्कार कहा जाता है। गृहस्थजीवनमें प्रवेश पानेका अधिकारी हो जाना समावर्तनसंस्कारका फल है।

१४-विवाहसंस्कार—विवाहसंस्कारका भारतीय संस्कृतिमें अत्यधिक महत्त्व है। जिस दार्शनिक विज्ञान और सत्यपर वर्णाश्रमी आर्यजातिके स्त्री-पुरुषोंका विवाहसंस्कार प्रतिष्ठित है, उसकी कल्पना दुर्विज्ञेय है। कन्या और

१-आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा। नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभिः॥ (स्मृतिसंग्रह)

वर—दोनोंके स्वेच्छाचारी होकर विवाह करनेकी आज्ञा शास्त्रोंने नहीं प्रदान की है। इसके लिये कुछ नियम और विधान बने हैं, जिनसे स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण होता है। पाणिग्रहणसंस्कार देवता और अग्निके साक्षित्वमें करनेका विधान है। भारतीय संस्कृतिमें यह दाम्पत्यसम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर तथा युगयुगान्तरतक माना गया है।

१५-विवाहाग्निपरिग्रह—विवाहसंस्कारमें लाजाहोम आदि क्रियाएँ जिस अग्निमें सम्पन्न की जाती हैं, वह आवसथ्य नामक अग्नि कहलाती है। इसीको विवाहाग्नि भी कहा जाता है।

१६-त्रेताग्निसंग्रह—विवाहाग्निसे अतिरिक्त तीन अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि)-की स्थापना तथा उनकी रक्षाका विधान भी शास्त्रोंमें निर्दिष्ट है। ये त्रेताग्नि कहलाती हैं। इनमें श्रौतकर्म सम्पन्न होते हैं।

अन्त्येष्टि-क्रिया

कुछ आचार्योंने मृतशरीरकी अन्त्येष्टिक्रियाको भी एक संस्कार माना है, जिसे पितृमेध, अन्त्यकर्म, अन्त्येष्टि अथवा श्मशानकर्म आदि नामोंसे भी कहा गया है। यह क्रिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और जीवनकी अन्तिम कड़ी है।

मृत्युके उपरान्त इस संस्कारमें मुख्यत: दाहक्रियासे लेकर द्वादशाहतकके कर्म सम्पन्न किये जाते हैं। मृत व्यक्तिके शरीरको स्नान कराकर, वस्त्रोंसे आच्छादितकर, तुलसी-स्वर्ण आदि पवित्र पदार्थोंको अर्पितकर शिखासूत्रसहित उत्तरकी ओर सिर करके चितामें स्थापित करना चाहिये और फिर औरस पुत्र या सपिण्डी या सगोत्री व्यक्ति सुसंस्कृत अग्निसे मन्त्रसहित चितामें अग्नि दे। अग्नि देनेवाले व्यक्तिको बारहवें दिन सपिण्डनपर्यन्त सारे कर्म करने चाहिये। तीसरे दिन अस्थिसंचय करके दसवें दिन दशाहकर तिलांजलि देनी चाहिये। दस दिन तथा बारह दिनतक अशौच रहता है, इसमें कोई नैमित्तिक कार्य नहीं करने चाहिये। बौधायनीय पितृमेध सूत्रोंमें इस क्रियाकी विशिष्ट विधि दी गयी है।

वर्णव्यवस्था

भारतीय संस्कृतिमें तथा शास्त्र, पुराणोंमें सनातनधर्मका आधार वर्णाश्रमकी व्यवस्था है। अनादिकालसे जीवोंके जो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्म हैं, जिनका फलभोग नहीं हो चुका है, उन्हींके अनुसार उनमें यथायोग्य सत्त्व-रज और तमोगुणकी न्यूनाधिकता होती है, इन्हीं गुणकर्मोंके अनुसार जीवको देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि विभिन्न योनियोंमें जाना पड़ता है। भगवान् जगत्की सृष्टिके समय जीवके लिये जब मनुष्ययोनिका निर्माण करते हैं, तब उन जीवोंके गुण और कर्मोंके अनुसार उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंमें उत्पन्न करते हैं; क्योंकि भगवान्का वचन है—'**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:।**' प्रजापति ब्रह्माके द्वारा चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि हुई है। इन चारों वर्णोंके लिये उनके स्वभावानुकूल पृथक्-पृथक् कर्मोंका विधान भी भगवान् ही कर देते हैं, जिससे ब्राह्मण शम-दमादि कर्मोंमें रत रहें, क्षत्रिय शौर्य-तेज आदिसे युक्त हों, वैश्य कृषि-गोरक्षामें लगे रहें और शूद्र सेवापरायण हों।

इस प्रकार गुण और कर्मके विभागसे वर्णविभाग बनता है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि मनमाने कर्मसे वर्ण बदल जाता है। वर्णका मूल जन्म है और कर्म उसके स्वरूपकी रक्षाका प्रधान कारण है। इस प्रकार जन्म और कर्म दोनों ही वर्णमें आवश्यक हैं।

मनुष्यके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही उसका विभिन्न वर्णोंमें जन्म हुआ करता है, जिसका जिस वर्णमें जन्म होता है, उसे उसी वर्णके निर्दिष्ट कर्मोंका आचरण करना चाहिये; क्योंकि वही उसका स्वधर्म है और स्वधर्म का पालन करते-करते मर जाना भगवान् श्रीकृष्णने कल्याणकारक बताया है—

'स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:॥'

—साथ ही परधर्मको भयावह भी बताया है। यह ठीक है; क्योंकि सब वर्णोंके स्वधर्मपालनसे ही सामाजिक शक्ति और सामंजस्य रहता है और तभी समाज-धर्मकी रक्षा एवं उन्नति होती है। स्वधर्मका त्याग और परधर्मका ग्रहण व्यक्ति और समाज दोनोंके लिये ही हानिकारक है। अत: व्यवस्थित वर्णव्यवस्थाको मर्यादित रहने देना, उनका संरक्षण करना, तदनुसार चलना सबके लिये सर्वथा कल्याणकारक सिद्ध होगा।

आश्रमव्यवस्था

वर्णव्यवस्थाकी भाँति आश्रमव्यवस्था भी भारतीय संस्कृति एवं हिन्दूधर्मका एक प्रमुख अंग है। ब्रह्मचर्य,

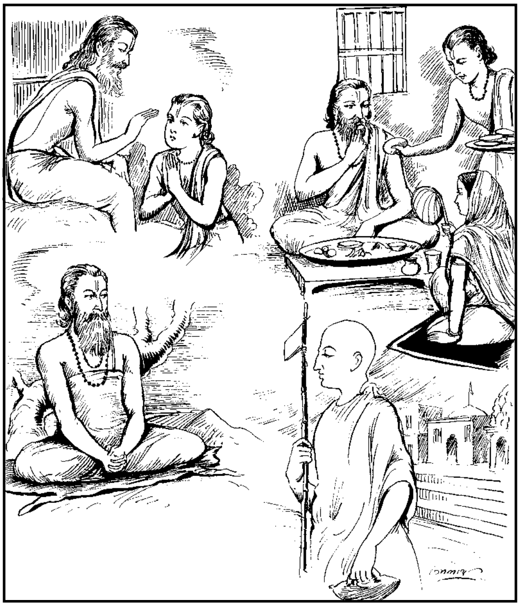

गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास—इन चार आश्रमोंमें प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्यकर्म उसके वर्णके साथ-साथ आश्रमपर भी निर्भर करता है।

ब्रह्मचर्याश्रम—प्रारम्भके २५ वर्ष ब्रह्मचर्य-आश्रमके अन्तर्गत माने गये हैं। प्राचीनकालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-बालक ५ से २५ वर्षकी अवस्थातक गुरुगृहमें ब्रह्मचर्यका पालन करते थे और इसके नियमानुसार रहते थे। शूद्र बालक भी अपने अधिकारानुसार इस उच्च आदर्शका अनुकरण करते थे। परनारीका स्पर्श तो क्या उनके प्रति दृष्टिपात करना यहाँतक कि उनका चिन्तन भी अपराध था। २५ वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर समावर्तन-संस्कारके बाद पाणिग्रहण-संस्कारके द्वारा वे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे।

गृहस्थाश्रम—आश्रमव्यवस्थामें गृहस्थाश्रमको एक महत्त्वपूर्ण आश्रम माना गया है। यह सभी आश्रमोंका आधार है। सम्पूर्ण जीवनकी जिम्मेदारियोंका निर्वाह इस आश्रममें ही होता है। युवावस्था प्राप्त होनेपर व्यक्तिमें एक विशेष शक्तिका संचार होना स्वाभाविक है। पचास वर्षकी अवस्थातक शास्त्रोंने उसे अधिकार दिया कि वह पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये वंशवृद्धिके निमित्त सन्तान उत्पन्न करे तथा जीविकोपार्जन करता हुआ अपने परिवारका पालन-पोषण करे। समाज, देश और राष्ट्रकी सेवा करे। गृहस्थाश्रमके अनेक कर्तव्योंके वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होते हैं।

वानप्रस्थाश्रम—पचास वर्षकी अवस्थातक प्राय: व्यक्तिका मस्तिष्क परिपक्व हो जाता है। इसके बाद अवस्था प्राय: ढलने लगती है। उसकी सन्तान भी तबतक युवावस्थाको प्राप्त हो जाती है। पारलौकिक चिन्तन तथा भगवदाराधनकी ओर उसकी प्रवृत्तियाँ विशेषरूपसे उन्मुख होने लगती हैं। इसलिये उसमें गृहस्थ जीवनकी जिम्मेदारियोंसे मुक्त होनेकी भावना जाग्रत् होना स्वाभाविक है। अत: शास्त्रकारोंने पचास वर्षकी अवस्थासे ७५ वर्षकी अवस्थाको वानप्रस्थ-आश्रमकी व्यवस्था दी। इस आश्रममें गृहस्थाश्रमके सुखोंका त्याग करता हुआ व्यक्ति निवृत्तिमार्गकी ओर अग्रसर होता है और मुख्य रूपसे वनमें, एकान्तमें अथवा तीर्थस्थलोंमें निवास करता हुआ निष्काम कर्म, भगवच्चिन्तन, आराधन एवं तपोमय जीवन व्यतीत करता है। तीर्थयात्रा, व्रत, व्रतोद्यापन, परोपकार, समाज-सेवा तथा अन्य सभी पारमार्थिक कार्य इस आश्रममें सम्पन्न किये जा सकते हैं।

संन्यासाश्रम—जीवनका अन्तिम आश्रम है—संन्यास-आश्रम। सभी प्रकारके दायित्वोंसे संन्यास लेनेका विधान इस आश्रममें है। जीवन-निर्वाहमात्रके लिये जो कर्म करना आवश्यक हो, उसके अतिरिक्त सभी कर्मोंसे वह संन्यास ले लेता है तथा **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** की भावनासे ब्रह्मचिन्तनमें ही अपना समय व्यतीत करता है।

वर्णाश्रमधर्म पुनर्जन्म और कर्मवादके सिद्धान्तपर अवलम्बित है। वर्णाश्रमधर्मका अन्तिम लक्ष्य है शिवत्वकी प्राप्ति। जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना तथा जन्म-जन्मान्तरके चक्रसे उद्धार पाना मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है। वर्णाश्रम इसी साधनाका पथ दिखलाता है।

व्रतोपवास

मनुष्योंके कल्याणके लिये यज्ञ, तपस्या, तीर्थसेवन, दान आदि अनेक साधन बताये गये हैं, उनमें एक साधन व्रतोपवास भी है, इसकी बड़ी महिमा है। अन्त:करणकी शुद्धिके लिये व्रतोपवास आवश्यक है। इससे बुद्धि, विचार और ज्ञानतन्तु विकसित होते हैं। शरीरके अन्त:स्थलमें परमात्माके

प्रति भक्ति-श्रद्धा और तन्मयताका संचार होता है। पारमार्थिक लाभके साथ-साथ व्रतोपवाससे भौतिक लाभ भी होते हैं। व्यापार, व्यवसाय, कला-कौशल, शास्त्रानुसन्धान और उत्साहपूर्वक व्यवहार-कुशलताका सफल सम्पादन किये जानेमें मन निगृहीत रहता है, जिससे सुखमय दीर्घ जीवनमें आरोग्य साधनोंका स्वत: संचय हो जाता है।

यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतोंसे दूर होते ही हैं। तथापि कायिक, वाचिक, मानसिक और सांसर्गिक पाप, उपपाप, महापापादि भी व्रतोपवाससे दूर होते हैं। उनके समूल नाशका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि व्रतारम्भके पूर्व पापयुक्त प्राणियोंका मुख हतप्रभ रहता है और व्रतकी समाप्ति होते ही वह सूर्योदयके कमलकी भाँति खिल उठता है। पुण्यप्राप्तिके लिये किसी पुण्यतिथिमें उपवास करने या किसी उपवासके कर्मानुष्ठानद्वारा पुण्य-संचय करनेके संकल्पको व्रत कहा जाता है। यम-नियम और शम-दम आदिका पालन, भोजन आदिका परित्याग अथवा जल-फल आदिपर रहना तथा समस्त भोगोंका त्याग करना—ये सब व्रतके अन्तर्गत समाहित होते हैं। शास्त्रोक्त नियम ही व्रत कहे जाते हैं। व्रतीको शारीरिक सन्ताप सहन करना पड़ता है, इसीलिये इसे तप भी कहा जाता है। इन्द्रियनिग्रहको दम और मनोनिग्रहको शम कहा गया है। व्रतमें इन्द्रियोंका नियमन (संयम) करना होता है। इसलिये इसे नियम भी कहते हैं। इसके पालनसे देवगण व्रतीपर प्रसन्न होकर उसे भोग तथा मोक्ष—सब कुछ प्रदान कर देते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, हवन, संतोष और चोरीका अभाव—इन नियमोंका पालन प्राय: सभी व्रतोंमें आवश्यक माना गया है—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।

(अग्निपु० १७५। १०-११)

इन सभी व्रतोपवासोंमें व्यक्तिको सात्त्विकताका आश्रयणकर अपने त्रिविध पापोंको दूर करनेके लिये, अन्त:करणकी शुद्धिके लिये विशेषत: भगवत्प्राप्तिके लिये ही इनका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके अनुष्ठानसे परम कल्याण होता है, बुद्धि निर्मल हो जाती है, विचारोंमें सत्त्वगुणका उद्रेक होता है, विवेक शक्ति प्राप्त होती है, सत्-असत्का निर्णय स्वत: होने लगता है और अन्तमें सन्मार्गमें प्रवृत्त होते हुए कर्ता या अनुष्ठाता लौकिक तथा पारलौकिक सुखोंको प्राप्त करता है। इसीलिये व्रतोपवासकी महिमा बताते हुए कहा गया है कि व्रतोपवास के अनुष्ठानसे पापोंका प्रशमन होता है। ईप्सित फलोंकी प्राप्ति होती है, देवताओंका आश्रयण प्राप्त होता है। व्रतीपर देवता अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। जो व्यक्ति निर्दिष्ट विधिसे व्रतोपवासका अनुष्ठान करते हैं, वे संसारमें सभी दु:खोंसे रहित होते हैं और स्वर्गलोकमें ऐश्वर्यका भोग करते हैं तथा देवताओंद्वारा सम्मान प्राप्त करते हैं।

दान-प्रकरण

मनुष्यके जीवनमें दानका अत्यधिक महत्त्व बतलाया गया है। यह एक प्रकारका नित्यकर्म है। मनुष्यको प्रतिदिन कुछ दान अवश्य करना चाहिये। '**श्रद्धया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्।**' दान चाहे श्रद्धासे दे अथवा लज्जासे दे या भयसे दे, परंतु दान किसी प्रकार अवश्य देना चाहिये। मानवजातिके लिये दान परम आवश्यक है। दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। अत: मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

अपने शास्त्रोंमें कहा है—'**विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्**' विभव और दान देनेकी सामर्थ्य अर्थात् मानसिक उदारता—ये दोनों महान् तपके फल हैं। विभव होना तो सामान्य बात है, यह कहीं भी हो सकता है, पर उस विभवको दूसरोंके लिये देना मनकी उदारतापर ही निर्भर करता है, जो जन्म-जन्मान्तरके पुण्यपुंजसे प्राप्त होती है।

शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका विशद विचार किया गया है। दान किसी शुभ स्थानपर अर्थात् तीर्थ आदिमें, शुभकालमें तथा अच्छे मुहूर्तमें सत्पात्रको देना चाहिये। यद्यपि यह विचार सर्वथा उचित है, परंतु अनवसरमें भी यदि अवसर प्राप्त हो जाय तो भी दानका अपना एक वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता है, जिस स्थानपर आवश्यकता है और जिस कालमें आवश्यकता है, उसी क्षण दान देनेका एक अपना विशेष महत्त्व है। विशेष आपत्तिकालमें तत्क्षण पीड़ितसमुदायको अन्न-आवास, भूमि आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती

है, वह इसी कोटिका दान है। यह दान व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकारसे होता है। शास्त्रों तथा पुराणोंमें दानके विविध स्वरूप वर्णित हैं—

(१) दैनिक जीवनमें जिस प्रकार व्यक्तिके द्वारा और सब कर्म सम्पन्न होते हैं, उसी प्रकार दान भी नित्य नियमपूर्वक करना चाहिये। इस प्रकारके दानमें अन्नदानका विशेष महत्त्व बताया गया है।

(२) विभिन्न पर्वोंपर तथा विशेष अवसरोंपर जो दान दिये जाते हैं, उन्हें नैमित्तिक दान कहते हैं। शास्त्र-पुराणोंमें इसकी विस्तारपूर्वक व्यवस्था बतायी गयी है। जैसे सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणके समय ताम्र तथा रजतपात्रमें काले तिल, स्वर्ण तथा द्रव्यादिका दान। एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति तथा व्यतीपात आदि पुण्यकालोंमें विशेषरूपसे दानका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनमें अन्नदान, द्रव्यदान, स्वर्णदान, भूमिदान तथा गोदान आदिका विशेष महत्त्व है।

(३) अनेक पुराणोंमें कुछ ऐसे दानोंका भी वर्णन है, जो मनुष्यकी कामनाओंकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं, जिनमें तुलादान, गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान या घटदान आदि और अष्ट एवं षोडशमहादान परिगणित हैं। ये सभी प्रकारके दान काम्य होते हुए भी यदि निःस्वार्थभावसे

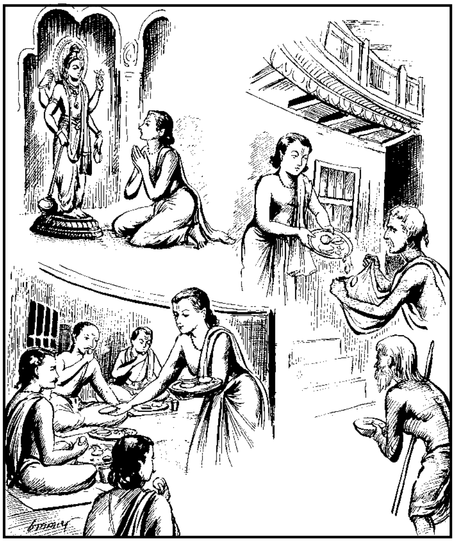

भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पण बुद्धिसे किये जायँ तो ये ब्रह्मसमाधिमें परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमें विशेष सहायक सिद्ध हो सकेंगे।

(४) कुछ दान बहुजनहिताय, बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है। देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र), अनाथालय, गोशाला, धर्मशाला, कुआँ, बावड़ी, तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि न्यायोपार्जित द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ किये जायँ तो परम कल्याणकारी सिद्ध होंगे।

सामान्यतः न्यायपूर्वक एकत्रित किये गये धनका दशमांश (आमदनीका दसवाँ हिस्सा) बुद्धिमान् व्यक्तिको दान-कार्यमें ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये लगाना चाहिये—

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

(स्कन्दपुराण)

अन्यायपूर्वक अर्जित धनका दान करनेसे कोई पुण्य नहीं होता, यह बात **'न्यायोपार्जितवित्तस्य'** इस वचनसे स्पष्ट होती है। देवीभागवतमें तो यह स्पष्ट किया गया है कि अन्यायोपार्जित द्रव्यसे किया गया कर्म व्यर्थ है, उससे न तो इस लोकमें कीर्ति होती है और न परलोकमें कोई पारमार्थिक फल ही मिलता है।* यह भी मान्यता है कि दान करनेसे धनकी शुद्धि होती है।

उपार्जित धनके दशमांशका दान करनेका यह विधान सामान्य कोटिके मानवोंके लिये किया गया है, जो व्यक्ति वैभवशाली, धनी और उदारचेता हैं, उन्हें तो अपने उपार्जित धनको पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि आजीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग) और (५) स्वजन (परिवारके लिये)—इस प्रकार पाँच प्रकारसे धनका विभाग करनेवाला इस लोक तथा परलोकमें भी आनन्दको प्राप्त करता है।

यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग इसलिये किया गया है कि जिससे जीविकाके साधनोंका विनाश न हो; क्योंकि भागवतमें स्पष्ट कहा गया है कि जिस सर्वस्व दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, बुद्धिमान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप आदि शुभकर्म करनेमें समर्थ होता है—

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥

* अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्। न कीर्तिरिह लोके च परलोके च तत्फलम्॥ (देवीभा० ३।१२।८)

जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन है, अनावश्यक एक पैसा भी खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका भरण-पोषण कर पाते हैं, ऐसे लोगोंके लिये दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे अवश्यपालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान करते हैं, उन्हें पुण्य नहीं प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है—

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥

जो धनी व्यक्ति अपने स्वजन—परिवारके लोगोंके दुःखपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर भी पालन न कर विप्रोंको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित विष-सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपमें अधर्म है।

पुराणोंमें दानके सम्बन्धमें तो यहाँतक कह दिया गया है कि जितनेमें पेट भर जाता है, उतनेमें ही मनुष्यका अधिकार है, उससे अधिकमें जो अधिकार मानता है वह चोर है, दण्डका भागी है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

तीर्थयात्रा

भारतीय संस्कृतिमें तीर्थयात्राका विशेष महत्त्व है। जिस देशकी भूमि, जल, तेज, वायु तथा आकाश (वातावरण)-में काम-क्रोधादि मानसिक रोगोंको दूर करनेकी विशेष योग्यता होती है, उन स्थानोंको शास्त्रकी भाषामें तीर्थ कहते हैं। यद्यपि शरीर और मनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण जिस देशका शरीरपर जैसा प्रभाव पड़ता है, वैसा ही सात्त्विक, राजस, तामस प्रभाव मनपर भी पड़ता है एवं जिस देशका मनपर जैसा प्रभाव पड़ता है, वैसा प्रभाव शरीरपर पड़ता है तथापि सात्त्विक प्रभाव डालनेवाले देशका नाम ही तीर्थ है।

भगवान्‌के अवतारोंके प्राकट्यस्थल, ब्रह्मा आदि विशिष्ट देवताओंकी यज्ञभूमियाँ और क्षेत्र, विशिष्ट नदियोंके संगम एवं पवित्र वन, पर्वत, देवखात, झील, झरने तथा प्रभावशाली संत-भक्त, ऋषि-मुनि, महात्माओंकी तपस्थलियाँ और साधनाके क्षेत्र आदि तीर्थ कहे जाते हैं। तीर्थोंमें जानेसे सत्संगके साथ-साथ वहाँके पूर्वोक्त सभी तत्त्वोंके सूक्ष्म तेजस्वी संस्कार उपलब्ध होते हैं, पिछले पाप नष्ट होकर पुण्योंका संचय होता है—

प्रभावादद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता॥

श्रद्धा-विश्वाससे तीर्थका फल बढ़ता है, तीर्थमें जानेवाले तथा रहनेवालेको परिग्रह, काम-क्रोध, लोभ-मोह, दम्भ, परनिन्दा और ईर्ष्या-द्वेषसे बचना चाहिये। तीर्थोंमें पाप करनेसे पापकी वृद्धि होती है, अतः तीर्थोंमें पापसे सर्वथा दूर रहना चाहिये।

भारतके चारों धाम और सातों पुरियोंकी तथा भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके आवासस्थल होनेसे तथा बदरिकाश्रम, रामेश्वरम् आदि धामोंकी, नर-नारायणके द्वारा तपस्या करने तथा श्रीरामादिद्वारा देवस्थापन करनेसे अत्यन्त महत्ता है। गंगादि नदियाँ नाम लेनेसे ही साधकको तार देती हैं। इसी प्रकार पुष्कर, मानसरोवर आदि ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए हैं और उनके द्वारा यज्ञ आदि करनेसे वे महान् तीर्थ हैं। जिनका शरीर और मन संयत होता है, उन्हें तीर्थोंका विशेष फल मिलता है।

गणपति आदि देवता एवं ऋषि-मुनि, पितर, संत-ब्राह्मणोंका पूजन-स्मरण करके तीर्थयात्राका शुभारम्भ करना चाहिये और यान आदिका आश्रय छोड़कर शुद्धभावसे धर्माचरणको बढ़ाते हुए तीर्थोंमें निवास करना चाहिये।

मानसतीर्थोंका महत्त्व

एक बार अगस्त्यजीने लोपामुद्रासे कहा—'निष्पापे! मैं उन मानस-तीर्थोंका वर्णन करता हूँ, जिन तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है, उसे सुनो। सत्य, क्षमा, इन्द्रिय-संयम, सब प्राणियोंके प्रति दया, सरलता, दान, मनका दमन, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धृति और तपस्या—ये प्रत्येक एक-एक तीर्थ हैं। इनमें ब्रह्मचर्य परमतीर्थ है। मनकी परमविशुद्धि तीर्थोंका भी तीर्थ है। जलमें डुबकी मारनेका नाम ही स्नान नहीं है, जिसने इन्द्रिय-संयमरूप स्नान किया है, वही स्नात है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।'

जो लोभी, चुगलखोर, निर्दय, दम्भी और विषयोंमें आसक्त है, वह सारे तीर्थोंमें भलीभाँति स्नान कर लेनेपर भी पापी और मलिन ही है। शरीरका मैल उतारनेसे ही

मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनके मलको निकाल देनेपर ही भीतरसे सुनिर्मल होता है। जलजन्तु जलमें ही पैदा होते हैं और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्गमें नहीं जाते; क्योंकि उनके मनका मल नहीं धुलता। विषयोंमें अत्यन्त राग ही मनका मल है और विषयोंसे वैराग्य ही निर्मलता है। चित्त अन्तरकी वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नानसे शुद्धि नहीं होती। जैसे सुराभाण्डको चाहे सौ बार जलसे धोया जाय, वह अपवित्र ही है, वैसे ही जबतक मनका भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन और स्वाध्याय—सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयममें हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यानसे विशुद्ध हुए, राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाले ज्ञानजलमें जो स्नान करता है, वही परमगतिको प्राप्त करता है।[१]

तीर्थका फल किसे मिलता है और किसे नहीं मिलता?

जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयमित हैं अर्थात् जिसके हाथ सेवामें लगे हैं, पैर तीर्थादि भगवत्-स्थानोंमें जाते हैं और मन भगवान्‌के चिन्तनमें संलग्न है, जिसे अध्यात्मविद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहता है, जिसकी भगवान्‌के कृपापात्रके रूपमें कीर्ति है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।[२]

जो प्रतिग्रह नहीं लेता, जो अनुकूल या प्रतिकूल—जो कुछ भी मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।[३]

जो पाखण्ड नहीं करता, नये-नये कामोंको आरम्भ नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुका है, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटा हुआ है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।[४]

जिसमें क्रोध नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलता है, व्रतपालनमें दृढ़ है और सब प्राणियोंको अपने आत्माके समान अनुभव करता है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।[५]

जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला धैर्यवान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करनेवाला है, उसकी तो बात ही क्या है?[६]

जो अश्रद्धालु है, पापात्मा (पापका पुतला—पापमें गौरवबुद्धि रखनेवाला), नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कमें ही डूबा रहता है—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थके फलको प्राप्त नहीं करते।[७] (स्कन्दपुराण)

१-शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे। येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते। ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्। तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥
न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते। स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः॥
यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः। सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः। मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः॥
जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः। न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः॥
विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते। तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचिः॥
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं तथा। सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः। तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥ (स्कन्दपु०, काशी० ६। २९—४१)

२-यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

३-प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्। अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

४-अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः। विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते॥

५-अक्रोधनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥

६-तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः। कृतपापो विशुद्ध्येत किं पुनः शुद्धकर्मकृत्॥

७-अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः। हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥

पापी मनुष्योंके तीर्थमें जानेसे उनके पापकी शान्ति होती है। जिनका अन्त:करण शुद्ध है, ऐसे मनुष्योंके लिये तीर्थ यथोक्त फल देनेवाला है।[१]

जो काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थमें प्रवेश करता है, उसे तीर्थयात्रासे कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती।[२]

जो यथोक्त विधिसे तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंको सहन करनेवाले वे धीर पुरुष स्वर्गमें जाते हैं।[३]

त्यौहारविज्ञान

जिस तिथि या वार (दिन)-में कोई विशेष लाभप्रद कार्य सम्पन्न होता है अथवा किन्हीं विशेष प्रेरणादायक महापुरुषोंका प्रादुर्भाव होता है, उस तिथि या वारको त्यौहार नामसे पुकारते हैं। भारतवर्षमें त्यौहारोंका अत्यधिक महत्त्व है। यहाँ दशहरा, दीपावली, होली आदि त्यौहारोंमें उच्चता-निम्नता तथा शत्रुता-उदासीनताके भावका परित्याग करके सभीसे गले लगकर मिलनेकी परम्परा बहुत ही उपयोगी है, इससे परस्पर सौहार्द बढ़ता है, सालभरकी शत्रुतामें न्यूनता आती है और उदासीनता मिटती है। इन सब लाभोंकी दृष्टिसे त्यौहारोंको अवश्य मनाना चाहिये। अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतवर्षमें त्यौहारोंकी संख्या अधिक है। रामनवमी, गंगादशहरा, जन्माष्टमी, विजयादशमी, दीपावली, गोवर्धनपूजन, अन्नकूट, भातृद्वितीया (भैयादूज), गोपाष्टमी, शिवरात्रि आदि यहाँके मुख्य पर्व हैं। इन सभी पर्वोंकी अपनी-अपनी विशेषता है तथा धार्मिक दृष्टिसे इनके मनानेका विशेष पुण्य है, अत: शास्त्रीय विधि-विधानसे इन पर्वोंको मनाना चाहिये।

नारीधर्म

भारतीय समाजमें नारी एक विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थानपर प्रतिष्ठित है। आर्यपुरुषने सदा ही उसे अपनी अर्धांगिनी माना है। इतना ही नहीं व्यवहारमें पुरुषमर्यादासे नारीमर्यादा सदा ही उत्कृष्ट मानी गयी है। हिन्दू संस्कृति इस भावनासे परिपूर्ण है—**'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:॥'** जिस कुलमें स्त्रियोंका समादर है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं है, उस परिवारमें समस्त (यज्ञादि) क्रियाएँ व्यर्थ होती हैं।

हिन्दू-जीवनमें नारी-मर्यादाको सदैव-सर्वत्र सुरक्षित रखनेका विशेष ध्यान रखा जाता है। धर्मशास्त्रका स्पष्ट आदेश है—**'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥'** बाल्यावस्थामें पिता, युवावस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करते हैं, स्त्रीको कभी इनसे पृथक् स्वतन्त्र रहनेका विधान नहीं है। धर्मशास्त्रद्वारा यह कल्याणकारी आदेश नारीस्वातन्त्र्यताका अपहरण नहीं है। नारीको निर्बाधरूपसे अपना स्वधर्मपालन कर सकनेके लिये बाह्य आपत्तियोंसे उसकी रक्षाके हेतु पुरुषसमाजपर यह भार दिया गया है। धर्मभीरु पुरुष इसे भार नहीं मानता, धर्मरूपमें स्वीकारकर अपना कल्याणकारी कर्तव्य समझता है।

नारीधर्मका निर्देश करते हुए धर्मशास्त्र कहता है—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

अर्थात् स्त्रियोंके लिये पृथक् रूपसे कोई यज्ञ, व्रत या उपवास करनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल पतिपरायणताके द्वारा ही वह उत्तम गतिको प्राप्त कर सकती है।

धर्मशास्त्रका यह आदेश विशेष महत्त्वपूर्ण और सारगर्भित है, इसमें नारीके प्रधानधर्म पातिव्रत्यका रहस्य भरा पड़ा है। पातिव्रत्यपालनकी जो अक्षय महिमा शास्त्रोंमें कही गयी है, वह 'रोचनार्थ फलश्रुति' नहीं, अक्षरश: सत्य है। पातिव्रत्यकी पूर्ण निष्ठा प्राप्त कर लेनेपर नारीको जीवविकासकी पूर्णता अर्थात् कैवल्यपद मोक्षकी प्राप्तिके लिये पुरुषयोनिमें जन्म लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। स्त्रीयोनिसे ही वह मोक्ष प्राप्त कर लेती है। निष्ठाके अनुसार ये पातिव्रत्य धर्मके आध्यात्मिक लाभ हैं।

पातिव्रत्यके उचित पालनसे नारीमें स्वाभाविकरूपसे ही सिद्धियोंके रूपमें दैवीशक्तियोंका आविर्भाव होता है।

१-नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्। यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्॥
२-कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्। न तेन किञ्चिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत्॥
३-तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये। सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नरा: स्वर्गगामिन:॥

यह पातिव्रत्यधर्मपालनका आधिदैविक लाभ है। पुरुषशरीरमें जो अलौकिक शक्तियाँ योग-तप आदि कठिन प्रयासपूर्ण उपायोंसे प्राप्त होती हैं, वे नारी-शरीरमें पातिव्रत्य-पालनसे अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं।

पातिव्रत्यके आधिभौतिक लाभ—पूर्ण सुखमय गार्हस्थ्य जीवन, उत्तम मेधावी धर्मनिष्ठ सन्तान आदि सहस्रों रूपोंमें स्पष्ट अनुभव किये जाते हैं।

नारीजातिके लिये सतीत्व धर्म ही उसके सर्वविध कल्याणका एकमात्र उपाय है। आधुनिक समयमें उसके परम कल्याणकारी नारीधर्मपर भी सामाजिक एवं राजकीय आघात होने लगे हैं। सगोत्र-विवाह, असवर्ण-विवाह, विधवा-विवाह, तलाक आदि अवांछनीय कलुषित प्रथाके प्रवर्तक, वर्णसंकर सृष्टिके उत्पादक आदि कुटुम्ब एवं समाजका विध्वंस करनेवाले, धर्ममर्यादा एवं अर्थमर्यादाके विरुद्ध राजकीय कानून बनाये जा रहे हैं और इन्हें समाजसुधार, नारीजागरण एवं समानाधिकार आदि रोचक नामोंसे पुकारा जा रहा है।

अपने शास्त्रोंके अनुसार नारीके जीवनकालमें यदि पतिका देहान्त हो जाय तो उसे साधु-जीवन व्यतीत करना चाहिये। पूर्ण सादगी और सरलतासे जीवन-निर्वाह करते हुए भगवन्नाम-जप, कीर्तन और सत्संगमें अपना अधिकाधिक समय व्यतीत करना चाहिये। एकमात्र भगवत्-शरणागतिको अवलम्बन मानकर अपने जीवनका निर्वाह करना उसके लिये कल्याणकारी है।

इस समय नारीजातिको सतर्क रहकर अपने कल्याणकारी धर्मका अवलम्बन नहीं छोड़ना चाहिये। नारीसमाजपर सृष्टि-उत्पादनका भार है। स्वतन्त्र भारतमें वीर, साहसी, मेधावी, पवित्र एवं सर्वतोभावेन उन्नतिशील सन्ततिका सृजन हो; इसीलिये प्रत्येक भारतीय नारीको अपने व्यावहारिक जीवनमें अन्तर्बाह्य पवित्रता बनाये रखनेके लिये सतत सावधान रहना चाहिये। स्वधर्मप्रतिपादक रामायण, महाभारत, भागवत आदि धार्मिक, ऐतिहासिक ग्रन्थोंका पाठ एवं मनन करना चाहिये। सिनेमा, सहशिक्षा (बालक-बालिकाओंका साथ-साथ पढ़ना) आदि कुप्रथाओंका बहिष्कार करना चाहिये। उपयुक्त समयपर सन्तानके शास्त्रानुसार संस्कार किये जायँ, इसके लिये विशेष ध्यान रखना चाहिये। साथ-ही-साथ प्रत्येक परिवार एवं समाजका भी कर्तव्य है कि वह कन्या, विवाहिता अथवा विधवा—सभी अवस्थाओंमें नारीको स्वधर्म-परिपालनकी पूरी सुविधा प्रदान करे और उपयुक्त शिक्षासे उन्हें पूर्ण सती, पूर्ण माता, उत्तम गृहिणी बनायें तथा प्रत्येक अवस्थामें उन्हें स्वधर्ममें प्रतिष्ठित रह सकनेके योग्य बनायें। इसीसे समाज एवं राष्ट्रकी उन्नति सम्भव है।

गोसेवा

गाय हमारी माता है। इस संसारमें गाय-जैसा परम उपयोगी प्राणी मनुष्यके लिये मिलना अति दुर्लभ है। गायके दूधमें माँके दूधके समान सभी गुण विद्यमान हैं, जो अन्य किसी दूधमें नहीं प्राप्त होते—इस सत्यको आजके भौतिक विज्ञानी भी स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि माताके दूधके अभावमें या कमीमें गायका दूध ही बालकोंको पिलाया जाता है। गायका दूध ही नहीं, गायका गोबर तथा गोमूत्र भी इतना अधिक पवित्र है कि भोजन-भजनके स्थानको गोबर-गोमूत्रसे लीपकर पवित्र करनेकी विधि है। शारीरिक रोगनाशक, विषप्रकोपनाशक आदि गुणोंको तो आजके वैज्ञानिक भी गोबरमें मानने लग गये हैं। हमारे आयुर्वेदमें सैकड़ों औषधियोंका शोधन गोमय और गोमूत्रसे ही किया जाता है। धर्मशास्त्रोंने तो शारीरिक शुद्धताके लिये नहीं, अपितु मानसिक शुद्धताके लिये भी गायके गोबरसे युक्त पंचगव्यके पानका विधान किया है। कृषिप्रधान भारतवर्षमें गायके बछड़ोंकी बैलोंके रूपमें विशेष उपयोगिता है।

इन सब दृष्टियोंसे माताके समान पालन करनेवाली गोमाताकी रक्षाके लिये शास्त्रकारोंने दो उपायोंका विधान किया है—(१) एक तो गोवधको पाप घोषित किया, जिससे गायोंका कोई विनाश न करे, (२) दूसरा गोरक्षाको महान् पुण्य बताया, जिससे उसकी रक्षामें लोगोंकी प्रवृत्ति हो। जैसे पुत्रका कर्तव्य है, वह अपनी माताकी सेवा करे, उसी प्रकार मनुष्यमात्रका यह कर्तव्य है कि वह गोमाताकी सेवा और उसका पालन करे।

गोसेवाका प्रत्यक्ष लाभ है, इससे भौतिक कामनाओंकी पूर्ति होती है। यह अनुभव करनेकी आवश्यकता है। इसके साथ ही परलोकमें शाश्वत सुख प्राप्त होता है। अपने शास्त्र तो कहते हैं—गायमें सभी देवी-देवताओंका निवास है। केवल गायकी सेवा-पूजासे सम्पूर्ण देवी-देवताओंकी

सेवा-पूजा स्वाभाविक रूपसे सम्पन्न हो जाती है।

पितृपूजा

जीवनकी परिसमाप्ति मृत्युसे होती है, इस ध्रुव सत्यको सभीने स्वीकार किया है। यह प्रत्यक्ष भी दिखायी पड़ता है। जीवात्मा इतना सूक्ष्म होता है कि जब यह शरीरसे निकलता है, उस समय कोई भी मनुष्य अपने चर्मचक्षुओंसे इसे देख नहीं सकता।

अपने शास्त्रों-पुराणोंमें मृत्युका स्वरूप, मरणासन्न व्यक्तिकी अवस्था और उसके कल्याणके लिये अन्तिम समयमें किये जानेवाले कृत्यों तथा विविध प्रकारके दानों आदिका निरूपण हुआ है, साथ ही मृत्युके बादके और्ध्वदैहिक संस्कार, पिण्डदान (दशगात्रविधिनिरूपण), एकादशाह, सपिण्डीकरण, अशौच आदि निर्णय, तर्पण, श्राद्ध, कर्मविपाक, पापोंके प्रायश्चित्तोंका विधान वर्णित है। मनुष्य इस लोकसे जानेके बाद अपने पारलौकिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्ध एवं शान्तिमय बना सकता है तथा उसकी मृत्युके बाद उस प्राणीके उद्धारके लिये पुत्र-पौत्रादिके क्या कर्तव्य हैं, इसकी जानकारी सबको होनी चाहिये।

'पुं नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः।' नरकसे जो त्राण (रक्षा) करता है, वही पुत्र है। सामान्यतः जीवसे इस जीवनमें पाप और पुण्य दोनों होते हैं। पुण्यका फल है स्वर्ग और पापका फल नरक। नरकमें पापीको घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, स्वर्ग-नरक भोगनेके बाद जीव पुनः अपने कर्मोंके अनुसार ८४ लाख योनियोंमें भटकने लगता है, पुण्यात्मा मनुष्य-योनि अथवा देवयोनि प्राप्त करते हैं, पापात्मा पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि तिर्यक्-योनि प्राप्त करते हैं, अतः अपने शास्त्रोंके अनुसार पुत्र-पौत्रादिका यह कर्तव्य होता है कि अपने माता-पिता तथा पूर्वजोंके निमित्त श्रद्धापूर्वक कुछ ऐसे शास्त्रोक्त कर्म करें, जिससे उन प्राणियोंको परलोकमें अथवा अन्य योनियोंमें भी सुखकी प्राप्ति हो सके।

इसीलिये भारतीय संस्कृति तथा सनातन धर्ममें पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये अपने माता-पिता तथा परिवारके मृत प्राणियोंके निमित्त श्राद्ध करनेकी अनिवार्य आवश्यकता बतायी गयी है। श्राद्धकर्मको पितृकर्म भी कहते हैं। पितृकर्मसे तात्पर्य पितृपूजासे है।

पितृकार्यमें वाक्यकी शुद्धता तथा क्रियाकी शुद्धता मुख्यरूपसे आवश्यक है। श्राद्धकी क्रियाएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं, अतः इन्हें सम्पन्न करनेमें अत्यधिक सावधानीकी आवश्यकता है। अतः पितृकार्यको देवकार्यकी अपेक्षा अधिक सावधानी और तत्परतासे करना चाहिये।

धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि देवकार्यकी अपेक्षा पितृकार्यकी विशेषता मानी गयी है, अतः देवकार्यसे पूर्व पितृकार्य करना चाहिये।[1] श्राद्धसे बढ़कर और कोई कल्याणकारी कर्म नहीं होता, अतः प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करते रहना चाहिये।[2] श्राद्धसे केवल अपनी तथा पितरोंकी ही संतृप्ति नहीं होती (अपितु जो व्यक्ति) जिस प्रकार विधिपूर्वक अपने धनके अनुरूप श्राद्ध करता है, वह ब्रह्मासे लेकर घासतक समस्त प्राणियोंको सन्तुष्ट कर देता है।[3] यहाँतक लिखा है कि जो शान्त होकर विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है—**'योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्याद् वै शान्तमानसः। व्यपेतकल्मषो नित्यं याति नावर्तते पुनः॥'** (हेमाद्रिमें कूर्मपुराणका वचन)

जीवनचर्याके शास्त्रोक्त पालनीय नियम

१-प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। उठते ही भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये।

२-शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवान्‌की उपासना, सन्ध्या, तर्पण आदि करने चाहिये।

३-बलिवैश्वदेव करके समयपर सात्त्विक भोजन करना चाहिये।

४-प्रतिदिन प्रातःकाल माता, पिता, गुरु आदि बड़ोंको प्रणाम करना चाहिये।

५-इन्द्रियोंके वश न होकर उनको वशमें करके उनसे यथायोग्य काम लेना चाहिये।

६-धन कमानेमें छल-कपट, चोरी, असत्य और बेईमानीका त्याग कर देना चाहिये। अपनी कमाईके धनमें

१-देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते। देवताभ्यो हि पूर्वं पितॄणामाप्यायनं वरम्॥ (हेमाद्रिमें वायु तथा ब्रह्मवैवर्तका वचन)

२-श्राद्धात् परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः॥ (हेमाद्रिमें सुमन्तुका वचन)

३-एवं विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः॥ (ब्रह्मपुराण)

यथायोग्य सभीका अधिकार समझना चाहिये।

७-माता-पिता, भाई-भौजाई, बहन-फूआ, स्त्री-पुत्र आदि पारिवारिकजन सादर पालनीय हैं।

८-अतिथिका सच्चे मनसे सत्कार करना चाहिये।

९-अपनी शक्तिके अनुसार दान करना चाहिये। पड़ोसियों तथा ग्रामवासियोंकी सदा सत्कारपूर्ण सेवा करनी चाहिये।

१०-सभी कर्म बड़ी सुन्दरता, सफाई और नेकनीयतीसे करने चाहिये।

११-किसीका अपमान, तिरस्कार और अहित नहीं करना चाहिये।

१२-अपने किसी कर्मसे समाजमें विच्छृंखलता और प्रमाद नहीं पैदा करना चाहिये।

१३-मन, वचन और शरीरसे पवित्र, विनयशील एवं परोपकारी बनना चाहिये।

१४-सब कर्म नाटकके पात्रकी भाँति अपना नहीं मानना चाहिये, परंतु करना चाहिये ठीक सावधानीके साथ।

१५-विलासितासे बचकर रहना चाहिये। अपने लिये खर्च कम करना चाहिये। बचतके पैसे गरीबोंकी सेवामें लगाने चाहिये।

१६-स्वावलम्बी बनकर रहना चाहिये, अपने जीवनका भार दूसरेपर नहीं डालना चाहिये।

१७-अकर्मण्य कभी नहीं रहना चाहिये।

१८-अन्यायका पैसा, दूसरेके हकका पैसा घरमें न आने पाये, इस बातपर पूरा ध्यान देना चाहिये।

१९-सब कर्मोंको भगवान्की सेवाके भावसे—निष्कामभावसे करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

२०-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, भोग नहीं—इस निश्चयसे कभी डिगना नहीं चाहिये और सारे काम इसी लक्ष्यकी साधनाके लिये करने चाहिये।

२१-किसीके घरमें जिधर स्त्रियाँ रहती हों (जनानेमें) नहीं जाना चाहिये। अपने घरमें भी स्त्रियोंको किसी प्रकारसे सूचना देकर जाना चाहिये।

२२-जिस स्थानपर स्त्रियाँ नहाती हों या जिस रास्तेसे स्त्रियाँ ही जाती हों, उधर नहीं जाना चाहिये।

२३-भूलसे तुम्हारा पैर या धक्का किसीको लग जाय तो उससे क्षमा माँगनी चाहिये।

२४-कोई आदमी रास्ता भूल जाय तो उसे ठीक रास्तेपर डाल देना चाहिये, चाहे ऐसा करनेमें स्वयंको कष्ट ही क्यों न हो।

२५-दूसरोंकी सेवा इस भावसे नहीं करनी चाहिये कि उसके बदलेमें कुछ इनाम मिलेगा, सेवा जब निष्कामभावसे की जायगी, तभी सेवाका सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकेगा।

२६-भगवत्प्रार्थनाके समय आँखें बन्द रखकर मनको स्थिर रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये और उस समय भगवान्के चरणोंमें बैठा हूँ, ऐसी भावना अवश्य होनी चाहिये।

२७-किसी स्थानमें जायँ, जहाँ हमारा आदर-सत्कार हो और हमारे साथ कोई मित्र या अतिथि हो तो हमें उसे भूल न जाना चाहिये, प्रत्युत उसे भी अपने आदर-सत्कारमें सम्मिलित कर लेना चाहिये।

अन्तमें हम अपने पाठकोंसे यह निवेदन करते हैं—अनादि अपौरुषेय वेदोंद्वारा प्रतिपादित विधि-निषेधात्मक व्यवस्था सर्वज्ञ, समदर्शी, सर्वहितैषी, मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके द्वारा धर्मशास्त्रोंमें की गयी है; जिसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, लौकिक और पारलौकिक—प्रत्येक समस्यापर गम्भीर विचार हुआ है।

ऋषि-महर्षियोंकी इस बहुमुखी, दूरदर्शी, वेदानुसारिणी, सर्वहितकारिणी विचारशैलीको हृदयंगम करते हुए अध्ययन करनेवाले पाठकोंके हृदयमें ऋषियोंके प्रति कृतज्ञताका सद्भाव उदय होना स्वाभाविक है और उनके प्रति अपने अज्ञानसे कल्पित कठोरता, पक्षपात आदि असद्भावका अभाव भी होना ही चाहिये।

भगवदाज्ञाके रूपमें शास्त्रोक्त जीवनचर्याका सर्वसाधारण जन यथामति अपने जीवनमें उपयोगकर भगवत्कृपासे लौकिक एवं पारलौकिक—दोनों रूपोंमें अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त करेंगे—यह हमारा विश्वास है।

—राधेश्याम खेमका